एटम बम

[कहानियां, रिपोर्ताज स्कॅच]

लेखक:—

अमृतलाल नागर

लखनऊ

प्रकाशक :

दत्त ब्रदर्स, अजमेर

१९५५

मूल्य
२॥)

प्रकाशक :—
दत्त ब्रदर्स
कचहरी रोड, अजमेर

प्रथम संस्करण, १९५५ ई०

कव्हर चित्रकर्ता
मदनलाल नागर
चौक, लखलऊ

मुद्रक :—
अर्जुनसिंह
राजस्थान आर्ट प्रिंटर्स, अजमेर

समर्पण

श्रद्धेय श्रीयुत् लक्ष्मणप्रसाद जी नागर

को

सविनय.

विषय सूची

कहानियों के सम्बन्ध में

आधुनिक काल में साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं के समान कहानी-साहित्य भी समृद्ध हो उठा है। काव्य के समान यद्यपि अभी उसकी ठीक से समीक्षा नहीं हो पाई, तथापि यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि हिन्दी में कवियों के उपरान्त आज कहानी लेखकों की संख्या ही अधिक है। कहानी की लोकप्रियता पर विस्तार से विचार करने का यह स्थान नहीं है, फिर भी अब समय आ गया ै जब हिन्दी कहानियों के संबन्ध में संक्षेप में कोई चलती बात न कहकर, इस बात का पता लगाया जाय कि हमारे एक कहानी-लेखक और दूसरे कहानी-लेखक में क्या अन्तर है और किस प्रकार अपनी साधना के बल पर कुछ कहानीकारों का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व और साहित्य में पृथक स्थान है। ऐसी ही मौलिक प्रतिभा से सम्पन्न कहानीकारों में 'एटम बम' के प्रणेता श्री अमृतलाल नागर भी हैं।

इस संग्रह में चार प्रकार की कहानियाँ पाई जाती हैं। पहले प्रकार की कहानियाँ वे हैं जिनमें मनुष्य के भीतर निहित मानवता को जाग्रत करने का प्रयत्न किया गया है। 'एटम बम', '१४ एप्रिल' 'एक था गाँधी', 'आदमी—नहीं नहीं', और 'जय-पराजय' ऐसी ही कहानियाँ हैं। इनमें लेखक ने विज्ञान के विनाशकारी रूप और साम्प्रदायिकता एवं रंग-भेद के विरुद्ध अपनी आवाज ऊंची की है। राजनीति के क्षेत्र में जहाँ उसका ध्यान जय-ध्वनियों की दिशा में गया है वहाँ ऐसे प्राणियों के असीम दुःख और मूक बलिदान के मूल्य को भी उसकी आत्मा ने पहचाना है जिस पर किसी की दृष्टि सहसा नहीं पड़ती। दूसरे प्रकार की कहानियाँ अंध-विश्वास पर गहरा आघात करती ह।

उदाहरण के लिए 'जंतर मंतर' और 'मरघट के कुत्ते' शीर्षक कहानियों को हम ले सकते हैं। अनपढ़ जनता आज भी कुछ लोगों की धूर्तता और असामाजिक कृत्यों का किस प्रकार शिकार होती रहती है, यह इन कहानियों में स्पष्ट कर दिया गया है। तीसरे प्रकार की कहानियों में थोड़ा मानवता का पुट है। 'बेबी की प्रेम कहानी' में बच्चों के बीच विकसित होने वाली कोमल-भावना पर लेखक की दृष्टि गई है, ऐसी भावुकता आगे चलकर हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है। दूसरी कहानी 'सूखी नदियाँ' में यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि आधुनिका का प्रेम कितना कृत्रिम, उथला और सारहीन होता है। चौथे प्रकार की कहानियाँ व्यंग प्रधान हैं। इसके अन्तर्गत 'डॉ० फरनीचर पलट' और 'कलार्क ऋषि का शाप' आती हैं। पहली कहानी में उस परिस्थिति का चित्रण है जिसके कारण मनुष्य के स्वभाव में विकृतियाँ स्वभाविक रूप से आ जाती हैं। दूसरी कहानी एक नई शैली के आधार पर पूंजीपतियों की शोषण-वृत्ति के भयङ्कर परिणाम पर प्रकाश डालती है। व्यंग दोनों का स्वच्छ और सोद्देश्य है।

कथा-साहित्य के सामान्य प्रवाह में न पड़कर लेखक ने अपनी मौलिक स्रजन-शक्ति का परिचय दिया है। जहाँ देखिए वहीं सस्ते रोमांस और कच्ची भावुकता का आज बोलबाला है। सामान्य पाठक ऐसी कहानियों को पढ़ते-पढ़ते अब ऊब उठा है और चाहता है कि मनोरंजन के साथ ही उसके अध्ययन और मनन के लिए भिन्न प्रकार की सामग्री मिलती—ऐसी सामग्री जिससे उसकी चेतना का परिष्कार होता। नागरजी की कहानियाँ ऐसी ही सामग्री जुटाती हैं। देश-विदेश में समय-समय पर न जाने कितनी महत्वपूर्ण घटनाएं घटती रहती हैं। मानव-जाति पर उनका व्यापक प्रभाव भी पड़ता ही है। अतः पहले ऐसी महान घटनाओं की ओर ध्यान देना, फिर उनके विषैले प्रभाव को लक्षित करना, उस अन्याय या विनाश के विरुद्ध

मानव चेतना को उकसा कर उसके कोमलतम तंतुओं को झकझोर देना, कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। बहुत व्यापक-चेतना-सम्पन्न व्यक्ति ही यह काम कर सकता है—केवल ऐसा व्यक्ति जो मानव-जाति के दुःख दर्द को पहचानता है और हृदय से मानवता का प्रेमी है, जो उसका उद्धार चाहता है और उसे पनपते देखना चाहता है और जो सबसे ऊपर आशावादी है और जानता है कि राजनीति, धर्म और विज्ञान के नाम पर कितनी ही बड़ी अनीति का प्रचार किया जाय, फिर भी मनुष्य अजेय है, उसे मिटाया नहीं जा सकता।

कहानियों में व्यक्ति के मनोविज्ञान से लेकर संसार की बड़ी समस्याओं को उठाया गया है। इनमें वर्णित बहुत-सी घटनाएं जैसे ४२ का विद्रोह, बारूद के जहाज में आग लगना, हिरोशिमा में एटम बम का गिरना, भारत में साम्प्रदायिक दंगों का होना, ऐसी हैं जो पिछले पंद्रह वर्षों अर्थात् उस अवधि में घटित हुई हैं जिसमें ये कहानियां लिखी गईं। इससे यह सिद्ध होता है कि नागरजी एक जागरूक कलाकार हैं। दूसरे ये नगर के जीवन और उसकी सभ्यता को ही मुख्यतः चित्रित करती हैं, बिल्कुल वैसे ही जैसे प्रेमचन्द की कहानियां मुख्यतः गांव के जीवन को लेकर चलती हैं। इसी प्रकार ये कहानियां हमारे युग और आधुनिक नागरिक जीवन का दुहरा प्रतिनिधित्व करती हैं।

नागरजी ने बड़े से बड़े दुःख, शोक और विनाश में भी मानवीय सम्बन्धों के भीतर की मर्मस्पर्शिता को पहचाना है। एक क्षण के लिए भी वे जीवन के कल्याणकारी स्वरूप को आंखों से ओझल नहीं होने देते। अतः उन्हें सच्चे अर्थों में मानवतावादी कहा जा सकता है। वे घृणा के विरुद्ध प्रेम के संदेशवाहक हैं और संभवतः यही इन कहानियों की वास्तविक शक्ति है।

कला की दृष्टि से इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है इसकी सरलता। अपनी बात को स्वाभाविक ढङ्ग से कहने का गुण भी नागरजी में कम नहीं। इन दोनों गुणों के कारण शैली में प्रवाह स्वतः आगया है। एकाध कहानी लम्बी अवश्य हो गई है; लेकिन इस बात का ध्यान रखते हुए कि पाठक कहीं ऊब का अनुभव न करने लगे, लेखक ने किसी न किसी कौशल का प्रयोग ऐसे स्थलों पर किया है जैसे 'आदमी—नहीं नहीं' में कथानक को शीर्षकों में बाँट दिया है। किसी-किसी रचना के सम्बन्ध में पाठक ऐसा प्रश्न कर सकता है कि वह उसे कहानी कहे या नहीं? ऐसी शंकाओं का समाधान यही है कि लेखक जब लिखने बैठता है तब उसे ढांचे का इतना ध्यान नहीं रहता, जितना मूल संवेदना को कलात्मक ढंग से प्रेषणीय बनाने का। सच पूछिए तो लेखक का वास्तविक कर्त्तव्य विधान की अपेक्षा संवेदना को पाठक के हृदय में ध्वनित करना ही अधिक है। ऐसी दशा में यदि साहित्य का कोई प्रकार स्वीकृत परिभाषा से थोड़ा हटा प्रतीत होता हो तो उसे परखने की सच्ची कसौटी नकारात्मक नहीं हो सकती। उसके संबंध में इतना कहना ही पर्याप्त नहीं है कि इस रचना को शुद्ध कहानी नहीं कह सकते। होना यह चाहिए कि हम उसकी परीक्षा करके उसके रूप-विधान को निश्चित करें और आवश्यकता हो तो उसे कोई नया नाम दें। यह बहुत सम्भव है कि किसी-किसी रचना में एक बिल्कुल नए और अछूते माध्यम के बीज निहित हों।

इन रचनाओं का सौन्दर्य इसलिए और भी बढ़ गया है कि कहीं-कहीं इन्होंने सांकेतिक शैली का प्रयोग किया है। प्रतीक संकेत के प्राण होते हैं। प्रतीक से यह नहीं समझना चाहिए कि उनका प्रयोग काव्य में ही होता या हो सकता है। नहीं, उनकी शक्ति को गद्य में भी परखा जा सकता है जैसा नागरजी ने परखा है। ये प्रतीक

ऐसे हैं जिनके अर्थ के सम्बन्ध में किसी भी पाठक को भ्रम नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए नागरजी के रङ्ग-सम्बन्धी प्रतीकों को ले सकते हैं। आज के संसार में गोरे, काले, लाल और पीले रङ्गों का जो आशय है वह किसी से छिपा नहीं है। इन शब्दों के प्रयोग से कहानी में से कटुता का अंश निकल गया है और रस का समावेश हो गया है। मानसिक चित्र जहाँ भी प्रस्तुत किए गए है वे बहुत स्पष्ट उतरे हैं। वैसा ही सफल वातावरण का चित्रण भी है। कथोपकथन तो बड़े ही अर्थगर्भित, उपयुक्त और दिलचस्प हैं। भाषा इन कहानियों की बोलचाल की है। कहीं-कहीं कठिन विदेशी शब्दों का प्रयोग अनभ्यास व्यक्ति को थोड़ा खटक सकता है। जैसे नुमायां, दुबाला, गोया, अदायगी, अलफ़ाज आदि पर यह बेमेल नहीं प्रतीत होता। नगर के जीवन में हम हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी से मिलते हैं और हमारे मुसलमान भाई अब भी ऐसे शब्दों का प्रयोग रात-दिन करते हैं। सुनते-सुनाते वे हमारे मन के शब्द-कोष में भी स्थान पा जाते है और लिखते समय रचनाकार की लेखनी से अनायास टपक पड़ते हैं।

आइए, अब हम इन कहानियों की आत्मा में प्रवेश करें।

—विश्वम्भर 'मानव'

लेखक की ओर से

'नवजीवन' के साहित्य संपादक, मेरे बाल्य बंधु ज्ञानचंद जैन ने मेरी सन् १९३६ से लेकर सन् १९५२ तक की कहानियों से यह संकलन प्रस्तुत किया है। कुछ रचनाओं के साथ उनका रचना काल छपने से छूट गया है। विकास की दृष्टि से पढ़ने वाले बन्धुओं की सुविधा के लिए छापे से छूटे हुए वर्ष यहां जोड़ रहा हूं। सूखी नदियां सन् '५१; एक था गांधी '४८; आदमी, नहीं! नहीं!! सन् '४७; मरघट के कुत्ते '४१; डॉक्टर फरनीचर पलट '५१; कलार्क ऋषि का शाप सन् १९५२ ई० की रचनायें हैं।

२३ मई, १९५५ ई०
चौक, लखनऊ।

अमृतलाल नागर

एटम बम

चेतना लौटने लगी। सांस में गंधक की तरह तेज़ बदबूदार और दम घुटानेवाली हवा भरी हुई थी। कोबायाशी ने महसूस किया कि बम के उस प्राण-घातक धड़ाके की गूंज अभी भी उसके दिल में धँस रही है। भय अभी भी उस पर छाया हुआ है। उसका दिल जोर जोर से धड़क रहा है। उसे साँस लेने में तकलीफ़ होती है, उसकी साँस बहुत भारी और धीमी चल रही है।

हारे हुए कोबायाशी का जर्जर मन इन दोनों अनुभवों से खीझ कर कराह उठा। उसका दिल फिर ग़फ़लतमें डूबने लगा। होश में आने के बाद, मृत्यु के पंजे से छूटकर निकल आने पर जो जीवनदायिनी स्फूर्ति और शान्ति उसे मिलनी चाहिये थी, उसके विपरीत यह अनुभव होने से ऊब कर, तन और मन की सारी कमज़ोरी के साथ वह चिढ़ उठा। जीवन कोबायाशी के शरीर में अपने अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए विद्रोह करने लगा। उसमें बल का संचार हुआ।

कोबायाशी ने आँखें खोलीं। गहरे कुहासे की तरह दम घुटाने वाला जहरीला धुआँ हर तरफ़ छाया हुआ था। उसके स्पर्श से कोबायाशी को अपने रोम-रोम में हज़ारों सुइयाँ चुभने का-सा अनुभव हो रहा था। रोम-रोम से चिनगियाँ छूट रही थीं। उसकी आँखों में भी जलन होने लगी; पानी आ गया। कोबायाशी ने घबरा कर आँखें मीच लीं।

लेकिन आँखें बन्द कर लेने से तो और भी ज्यादा दम घुटता है। कोबायाशी के प्राण घबरा उठे। वे कहीं भी सुरक्षित न थे। मौत अँधेरे की तरह उस पर छाने लगी। यह हीनावस्था की पराकाष्ठा थी। कोबायाशी की आत्मा रो उठी। हारकर उसने फिर अपनी आंखें खोल

दीं। हठ के साथ वह उन्हें खोले ही रहा। ज़हरीला धुआ लाल-मिर्च के पाउडर की तरह उसकी आंखों में भर रहा था। लाख तकलीफ हो, मगर वह दुनिया को कम से कम देख तो रहा है। बम गिरने के बाद भी दुनिया अभी नेस्तनाबूद नहीं हुई---आंखें खुली रहने पर यह तसल्ली तो उसे हो ही रही है। गर्दन घुमा कर उसने हिरोशिमा की धरती को देखा, जिस पर वह पड़ा हुआ था। धरती के लिये उसके मन में ममत्व जाग उठा। कमजोर हाथ आप ही आप आगे बढ़कर अपने नगर की मिट्टी को स्पर्श करने का सुख अनुभव करने लगे।

..मन कहीं खोया। अपने अन्दर उसे किसी जबरदस्त कमी का एहसास हुसा। यह एहसास बढ़ता ही गया। आन्तरिक हृदय से सुख का अनुभव करते ही उसकी कल्पना दुःख की ओर प्रेरित हुई। स्मृति झकोले खाने लगी।

चेतन-बुद्धि पर छाये हुए भय से बचने के लिये अन्तर-चेतना की किसी बात पर विस्मृति का मोटा पर्दा पड़ रहा था। मौत के चंगुल से छटकर निकल आने पर, पार्थिवता की बोझ-स्वरूप धरती के स्पर्श से, जीवन को स्पर्श करने का सुख उसे प्राप्त हुआ था। परन्तु भावना उत्पन्न होते ही उसके सुख में घुन भी लग गये। भय ने नींवें डगमगा दीं। अपनी अनास्था को दबाने के लिये वह बार-बार ज़मीन को छूता था। अन्तर के अविश्वास को चमत्कार का रूप देते हुए, इस खुली जगह में पड़े रहने के बावजूद अपने जीवित बच जाने के बारे में उसे भगवान की लीला दिखायी देने लगी।

करुणा सोते की तरह दिल से फूट निकली। पराजय के आँसू इस तरह अपना रूप बदल कर दिल में घुमेड़ें ले रहे थे। जहरीले धुँए के कारण आँखों में भरे हुए पानी के साथ-साथ वे आँसू भी घुल-मिलकर गाल से ढुलकते हुए जमीन पर टपकने लगे।

बेहोश होने से कुछ मिनट पहले उसने जिस प्रलय को देखा था,

उसकी विकरालता अपने पूरे वजन के साथ कोबायाशी की स्मृति पर आघात कर के उसके टुकड़े-टुकड़े कर रही थी। वह ठीक-ठीक सोच नहीं पा रहा था कि जो दृश्य उसने देखा, वह सत्य था क्या ?.... धड़ाका ! जूड़ी बुखार की कँपकँपी की तरह जमीन काँप उठी थी। बम था—दुश्मनों का हवाई हमला । हजारों लोग अपने प्राणों की पूरी शक्ति लगा कर चीख उठे थे।..कहाँ हैं वे लोग ? वे प्राणान्तक चीखें, वह आर्त्तनाद जो बम के धड़ाके से भी अधिक ऊँचा उठ रहा था—वो इस समय कहाँ है ? खुद वह इस समय कहाँ है ? और ...

कुछ खो देने का एहसास फ़िर हुआ। कोबायाशी विचलित हुआ। उसने कराहते हुए करवट बदल कर उठने की कोशिश की; लेकिन उसमें हिलने की भी ताब न थी। उसने फ़िर अपनी गर्दन जमीन पर डाल दी। हवा में काले-काले जर्रे भरे हुए थे। धुँआ, गर्मी, जलन, प्यास—उसका हलक सूखा जा रहा था। बचैनी बढ़ रही थी। वह उठना चाहता था। उठकर वह अपने चारों तरफ देखना चाहता था। क्या ?—यह अस्पष्ट था। उसके दिमाग में एक दुनिया चक्कर काट रही थी। नगर, इमारतें, जन-समूह से भरी हुई सड़कें, आती-जाती सवारियाँ, मोटरें, गाड़ियाँ, साइकिलें..और और..दिमाग इन सब में खोया हुआ कुछ ढूंढ रहा था; अटका, मगर फौरन ही बढ गया। जीवन के पच्चीस वर्ष जिस वातावरण से आत्मवत् परिचित और घनिष्ठ रहे थे, वह उसके दिमाग़ की स्क्रीन पर चलती-फिरती तस्वीरों की तरह नुमायाँ हो रहा था। लेकिन सब कुछ अस्पष्ट, मिटा-मिटा सा ! कल्पना में वे चित्र बड़ी तेजी के साथ झलक दिखा कर बिखर जाते थे। इससे कोबायाशी का मन और भी उद्विग्न हो उठा।

प्यास बढ़ रही थी। हलक़ में काँटे पड गए थे। और उसमें उठने की ताब न थी। एक बूंद पानी के लिए जिन्दगी देह को छोड़कर चले जाने की धमकी दे रही थी, और शरीर फिर भी नहीं

उठ पाता था । कोबायाशी को इस वक्त मौत ही भली लगी । बड़े दर्द के साथ उसने आँखें बन्द कर लीं ।

मगर मौत न आयी ।

कोबायाशी सोच रहा था : "मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया था जिसकी ये सजा मुझे मिल रही है ? अमीरों और अफसरों को छोड़कर कौन ऐसा आदमी था जो यह लड़ाई चाहता था ? दुनिया अगर दुश्मनी निकालती, तो उन लोगों से । हमने उनका क्या बिगाड़ा था ? हमें क्यों मारा गया ? ..प्यास लग रही है। पानी न मिलेगा । ऐसी बुरी मौत मुझे क्यों मिल रही हे ? ईश्वर ! मैंने ऐसा क्या अपराध किया था ?"

करुणासागर ईश्वर कोबायाशी के दिल में उमँड़ने लगा । आँखों से गंगा-जमना बहने लगी। सबसे बड़े मुंसिफ के हुजूर में लाठी और भैंसवाले न्याय के विरुद्ध वह रो रो कर फ़रियाद कर रहा था । आँसू हलकान किए दे रहे थे। लम्बी-लम्बी हिचकियाँ बँध रही थीं, जिनसे पसलियों को, और सारे शरीर को, बार-बार झटके लग रहे थे। इस तरह, रोने से दम घोंटने वाला जहरीला धुँआ जल्दी-जल्दी पेट में जाता था। उसका जी मिचलाने लगा । उसके प्राण अटकने लगे ।

——प्राणों के भय से एक लम्बी हिचकी को रोकते हुए जो साँस खींची तो कई पल तक वह उसे अन्दर ही रोके रहा; फिर सुबकियों में वह धीरे-धीरे टूटी । रो भी नहीं सकता ! ——कोबायाशी की आँखों में फिर पानी भर आया। कमज़ोर हाथ उठा कर उसने बेजान-सी उँगलियों से अपने आँसू पोंछे ।

आँखों के पानी से उंगलियों के दो पोर गीले हुए; उतनी जगह में तरावट आयी । कोबायाशी की काँटों पड़ी जबान और हलक को फिर से तरावट की तलब हुई । प्यास बगूले सी फिर भड़क उठी ।

हठात उसने अपनी आँसुओं से नम उंगलियाँ ज़बान से चाट लीं। दो उंगलियों के बीच में बिखरी हुई आँसुओं की एक बूंद उसकी जबान का ज़ायका बदल गयी और उसे पछतावा होने लगा—इतनी देर रोया, मगर बेकार ही गया। उसकी फिर से रोने की तबीयत होने लगी; मगर आँसू अब न निकलते थे। कोबायाशी के दोनों हाथों में ताकत आ गयी। नम आँखों से लेकर गीले गालों के पीछे कनपटियों तक आँसू की एक बूंद जुटाकर अपनी प्यास बुझाने के लिए वह उँगलियाँ दौड़ाने लगा। आँसू खुश्क हो चले थे; और कोबायाशी की प्यास दम तोड़ रही थी।

चक्कर आने लगे। गफ़लत फिर बढ़ने लगी। बराबर सुन्न पड़ते जाने की चेतना अपनी हार पर बुरी तरह से चिढ़ उठी और उसकी चिढ़ विद्रोह में बदलती गयी। गुस्सा शक्ति बनकर उसके शरीर में दमकने लगा—क़ाबू से बाहर होने लगा। माथे की नसें तड़कने लगीं। वह एकदम अपने क़ाबू से बाहर हो गया। दोनों हाथ टेक कर उसने बड़े ज़ोम के साथ उठने की कोशिश की। वह कुछ उठा भी। कमजोरी की वजह से माथे में फिर मूरछा आने लगी। उसने सम्हाला : मन भी तन भी। दोनों हाथ मजबूती से ज़मीन पर टेके रहा। हाँफते हुए, मुँह से एक लम्बी साँस ली : और अपनी भुजाओं के बल पर घिसट कर वह कुछ और उठा। पीठ लगी तो घूमकर देखा—पीछे दीवार थी। उसने ज़िन्दगी की एक और निशानी देखी। कोबायाशी का हौसला बढ़ा। मौत को पहली शिकस्त देकर पुरुषार्थ ने गर्व का बोध किया। परन्तु पीड़ा और जड़ता का जोर अभी भी कुछ कम न था। फिर भी उसे शान्ति मिली। दीवार की तरफ देखते ही ध्यान बदला। सिर उठाकर ऊँचे देखा, दीवार टूट गयी थी। उसे आश्चर्यमय प्रसन्नता हुई। दीवार से टूटा हुआ मलबा दूसरी तरफ गिरा था। भगवान ने उसकी कैसी रक्षा की। जीवन के प्रति फिर से आस्था

उत्पन्न होने लगी। टूटी हुई दीवार की ऊँचाई के साथ-साथ उसका ध्यान और ऊँचा गया कि यह तो अस्पताल की दीवार है। . . अभी अभी वह अपनी पत्नी को भर्ती कराके बाहर निकला था। सबेरे से उसे दर्द उठ रहे थे, नयी जिन्दगी आने को थी। पत्नी, जिसे बच्चा होने वाला था . . डाक्टर, नर्स, मरीजों के पलंग . . डाक्टर ने उससे कहा था: 'बाहर जाकर इन्तजार करो !' वह फिर बाहर आकर अस्पताल के नीचे ही कंकड़ों की कच्ची सड़क पर सिगरेट पीते हुए टहलने लगा था। आज उसने काम से भी छुट्टी ले रखी थी। वह बहुत खुश था।—जब अचानक आसमान पर कानों के पर्दे फाड़ने वाला धमाका हुआ था। अंधा बना देनेवाली तीव्र प्रकाश की किरणें कहीं से फूटकर चारों तरफ़ बिखर गयीं। पलक मारते ही काले धुँए की मोटी चादर बादलों से घिरे हुए आसमान पर तेज़ी से बिछती चली गयी। काले धुँए की बरसात होने लगी। चमकते हुए विद्युत्कण सारे वातावरण में फैल गये थे; सारा शरीर झुलस गया; दम घुटने लगा था। सैंकड़ों चीखें एक साथ सुनायी दी थीं। इस अस्पताल से भी आयी होंगी। दीवार उसी तरफ गिरी है और उन चीखों में उसकी पत्नी की चीख भी ज़रूर शामिल रही होगी . . . . कोबायाशी का दिल तड़प उठा। उसे अपनी पत्नी को देखने की तीव्र उत्कंठा हुई।

होश में आने के बाद पहली बार कोबायाशी को अपनी पत्नी का ध्यान आया था। बहुत देर से जिसकी स्मृति खोयी हुई थी, उसे पाकर कोबायाशी को एक पल के लिये राहत हुई। इससे उसकी उत्कंठा का वेग और भी तीव्र हो गया।

साल भर पहले उसने विवाह किया था। एक वर्ष का यह सुख उसके जीवन की अमूल्य निधि बन गया था। दुःख, यातना और संघर्ष के पिछले चौबीस वर्षों के मरुस्थल से जीवन में आज की यह महायंत्रणा

जुड़कर सुख-शांति के एक वर्ष को पानी की एक बूँद की तरह सोख गई थी।

बचपन में ही उसके माँ-बाप मर गये थे। एक छोटा भाई था जिसके भरण-पोषण के लिये कोबायाशी को दस बरस की उम्र में ही बुजुर्गों की तरह मर्द बनना पड़ा था। दिन और रात जी तोड़ कर मेहनत-मजूरी की, उसे शाहज़ादे की तरह पाल-पोस कर बड़ा किया। तीन बरस हुए वह फौज में भरती होकर चीन की लड़ाई पर चला गया। और फिर कभी न लौटा।

अपने भाई को खोकर कोबायाशी जिन्दगी से ऊब गया था। जीवन से लड़ने के लिये उसे कहीं से प्रेरणा नहीं मिलती थी। वह निराश हो चुका था। बेवा मकान-मालकिन की लड़की उसके जीवन में नया रस ले आयी। उनका विवाह हुआ।..और आज उसके घर में एक नयी जिन्दगी आने वाली थी। आज सबेरे से ही वह बड़े जोश में था। उसके सारे जोश और उल्लास पर यह गाज गिरी! जहरीले धुएँ की तपिश ने उसके अन्तर तक को भून दिया था। वेदना असह्य हो गयी थी, ——और चेतना लुप्त हो गयी।

अपनी पत्नी से मिलने के लिये कोबायाशी सब खोकर तड़प रहा था। वह जैसे बच गया वैसे ही भगवान ने शायद उसे भी बचा लिया हो। लेकिन दीवार तो उधर गिरी है।——"नहीं!"

——कोबायाशी चीख़ उठा। होश में आने के बाद पहली बार उसका कंठ फूटा था। सारे शरीर में उत्तेजना की एक लहर दौड़ गयी। स्वर की तेजी से उसके सूखे हुए निष्प्राण कंठ में खराश पैदा हुई। प्यास फिर होश में आयी। कोबायाशी के लिये बैठा रहना असह्य हो गया। अन्दरूनी जोम का दौरा कमज़ोर शरीर को झिझोड़ कर उठाने लगा। दीवार का सहारा लेकर वह अपने पागल जोश के साथ तेजी से उठा। वह दौड़ना चाहता था। दिमाग़ में दौड़ने की तेजी लिये हुए, कमजोर

और डगमगाते हुए पैरों से वह धीरे-धीरे अस्पताल के फाटक की तरफ़ बढ़ा ।

फाटक टूट कर गिर चुका था। अन्दर मलबा-मिट्टी ज़मीन की सतह से लगा हुआ पड़ा था। कुछ नहीं—वीरान ! जैसे यहाँ कभी कुछ बना ही न था। सब मिट्टी और खँडहर ! दूर-दूर तक वीरान—खाली ! खाली ! खाली ! उसकी पत्नी नहीं है । उसकी दुनिया नहीं है । वह दुनिया जो उसने पच्चीस बरसों तक देखी, समझी और बरती थी, आज उसे कहीं भी नहीं दिखाई पड़ती । सपने की तरह वह काफ़ूर हो चुकी है ।

मीलों तक फैली हुई वीरानी को देखकर वह अपने को भूल गया, अपनी पत्नी को भूल गया। इस महानाश के विराट शून्य को देखकर उसका अपनापन उसी में विलीन हो गया। उसकी शक्ति उस महाशून्य में लय हो गयी। जीवन के विपरीत यह अनास्था उसे चिढ़ाने लगी। टूटी दीवार का सहारा छोड़कर वह बेतहाशा दौड़ पड़ा । वह जोर-जोर से चीख रहा था : "मुझे क्यों मारा ? मुझे क्यों मारा ?"—मीलों तक उजड़े हुए हिरोशिमा नगर के इस खँडहर में लाखों निर्दोष प्राणियों की आत्मा बन कर पागल कोबायाशी चीख़ रहा था : "मुझे क्यों मारा? मुझे क्यों मारा ?"

× × × ×

कैम्प-अस्पताल में हजारों जख्मी और पागल लाये जा रहे थे। डॉक्टरों को फुर्सत नहीं, नर्सों को आराम नहीं, लेकिन इलाज कुछ भी नहीं हो रहा था। क्या इलाज करें ? चारों ओर चीख-चिल्लाहट, दर्द और यंत्रणा का हंगामा ! "गोरा—दुश्मन ! खुदा—दुश्मन ! बादशाह-दुश्मन !"—पागलपन के उस शोर में हर तरफ अपने लिए दर्द का, अपने परिवार और बच्चों के लिये सवाल था, जिसकी यह सजा उन्हें मिली है ! और दुश्मनों के लिये नफ़रत थी, जिन्होंने बिना किसी अपराध के उनकी जान ली ।

अस्पताल के बरामदे में एक मरीज दहन फाड़ कर चिल्ला उठा : "मुझे क्यों मारा ? मुझे क्यों मारा ?"

अस्पताल के इंचार्ज डॉक्टर सुजुकी इन तमाम आवाजों के बीच में खोये हुए खड़े थे । वह हार चुके थे । कल से उन्हें नींद नहीं, आराम नहीं, भूख-प्यास नहीं । ये पागलों का शोर, दर्द, चीख, कराह ! उनका दिल, दिमाग़ और जिस्म थक चुका था । अभी थोड़ी देर पहले उन्हें खबर मिली थी, नागासाकी पर भी एटम बम गिराया गया । वे इससे चिढ़ उठे थे : "क्यों नहीं बादशाह और वजीर हार मान लेते ? क्या अपनी झूठी आन के लिये वह जापान को तबाह कर देंगे ?" उन्हें दुश्मनों पर भी गुस्सा आ रहा था : "इन्हें क्यों मारा गया ? ये किसी के दुश्मन नहीं थे । इन्हें अपने लिये साम्राज्य की चाह न थी । अगर इनका अपराध है तो केवल यही कि यह अपने बादशाह के मजबूरन बनाये हुए गुलाम हैं । व्यक्ति की सत्ता के शिकार हैं । संस्कारों के गुलाम हैं ।..दुश्मन इन्हें मार कर खुश हैं । जापान की निर्दोष और मूक जनता ने दुश्मनों का क्या बिगाड़ा था जो उनपर एटम बम बरसाये गये ? विज्ञान की नयी खोज की शक्ति आजमाने के लिये उन्हें लाखों बेज़बान बेगुनाहों की जान लेने का क्या अधिकार था ? क्या यह धर्म-युद्ध है ?——सदादर्शों के लिये लड़ाई हो रही है ? एटम का विनाशकारी प्रयोग विश्व को स्वतन्त्र करने की योजना नहीं, उसे गुलाम बनाने की जिद है । ऐसी जिद जो इन्सान को तबाह करके ही छोड़ेगी ।....और इन्सानियत के दुश्मन कहते हैं कि एटम का आविष्कार मानव-बुद्धि की सब से बड़ी सफलता है ।....पागल कहीं के !...."

नर्स आयी । उसने कहा : "डॉक्टर ! सेन्टर से खबर आयी है, और नये मरीज भेजे जा रहे हैं ।"

डॉक्टर सुजुकी के थके चेहरे पर सनक भरी सूखी हँसी दिखाई दी । उन्होंने जवाब दिया : "इन नये मुर्दा मरीजों के लिये नयी ज़िंदगी कहाँ

से लाऊंगा, नर्स ? विनाश-लोलुप स्वार्थी मनुष्य शक्ति का प्रयोग भी जीवन नष्ट करने के लिये ही कर रहा है; फ़िर निर्माण का दूसरा जरिया ही क्या रहा ? फेंक दो उन जिन्दा लाशों को, हिरोशिमा की वीरान धरती पर !––या उन्हें जहर दे दो ! अस्पताल और डॉक्टरों का अब दुनिया में कोई काम नहीं रहा।"

नर्स के पास इन फ़िजूल की बातों के लिये समय नहीं था।––नये मरीज आ रहे हैं सैकड़ों अस्पताल में पड़े है। वह डॉक्टर पर झुँझला उठी।

"यह वक्त इन बातों का नहीं है डॉक्टर ! हमें जिन्दगी को बचाना है। यह हमारा पेशा है, फ़र्ज है। एटम की शक्ति से हार कर क्या हम इन्सान और इन्सानियत को चुपचाप मरते हुए देखते रहेंगे ? चलिये आइये, मरीजों को इंजेक्सन लगाना है, आगे का काम करना है।"

नर्स डॉक्टर सुजीकी का हाथ पकड़ कर तेजी से आगे बढ़ गयी।

(१९४५)

१४ एप्रिल

शाम के चार बज रहे थे। बम्बई निन्नानबे-योग में समाधिस्थ थी। अचानक कान के पर्दों को बचाने की पड़ी।

लोगों ने अपने दिलों में दहला देने वाला एक गहरा धमाका महसूस किया। खुद को ठगने वाले इन्सान की आत्मा की तरह सहनशीलता की सीमा को लांघकर अत्याचारों के विरोध में बंबई क्रान्ति कर उठी। ज़मीन, मकानात, दूकानें, महल-कोठियां, झोपड़ियां, लक्ष्मीनारायण का मंदिर, यहाँ तक कि लाट साहब की कोठी भी हिल उठी।

अचार की तरह ठूंस ठूंस कर भरी हुई भीड़ के बोझ के साथ दुमंज़िला बस उलट कर तार के खम्भे से जा टकराई। औरत, मर्द, बूढ़े, बच्चे सीटों से उछल कर एक-दूसरे पर गिरने लगे। 'जान छोड़ कर चीखने' वाले मुहावरे के पूरे वजन के साथ एक सम्मिलित चीख धड़ाके को उबा देने वाली लम्बी "हूँऽहुँऽऽ" करती हुई गूंज को दुबाला करती हुई निकल गई। ज़िंदगी और मौत के बीच का वह एक पल बम्बई के लिए भारी पड़ गया था। फ्लैट्स, फर्निचर और ऐशो-इशरत के सारे सामान काँप उठे, तिजोरियाँ हिल गईं, दफ्तर-कचहरियां डगमगा उठीं, अमीरी-ग़रीबी, अच्छे-बुरे, और छोटे-बड़े का भेदभाव मिटा कर बम्बई की आदमीयत दहल उठी थी।

'बम !', जापान !,' एयर रेड़ !' शतप्रतिशत प्रजावर्ग में एक सनसनी सी फैल गई।

धड़ाके और भूकम्प से मौत की तरह चौंक कर आदमी अपने को फिर से महसूस करने लगा। बम्बई अपने अस्तित्व को फिर से याद करने का प्रयत्न करने लकी; धड़ाके की गूंज अब फिर कानों में ही

बाक़ी रह गई थी। आकाश में गहरे मटमैले और नीले रंग का बड़ा मोटा-सा बादल का एक टुकड़ा ऊँचा उठ रहा था।

'फ़ोरेस रोड में आग लग गई!' बम्बई के शिक्षित और सभ्य पुरुष भय की 'कायरता' को भूलने के लिए खिसियानेपन के साथ मज़ाक करने की कोशिश करने लगे। फोरेस रोड बम्बई का मशहूर बदनाम मोहल्ला है। मिलिट्री के सिपाहियों, लामकान बाबुओं, और अखबारों के विज्ञापन-विभाग की आमद की सब से बड़ी रक़म से उस मुहल्ले का घना सम्बन्ध है।

लेकिन सब के दिल इस डर का कारण जानने के लिए अन्दर ही अन्दर तड़प रहे थे। मज़ाक़ करने की चेष्टा मात्र मराठी 'चेष्टा'† ही रह गई। 'सिवरी के पैट्रोल टैंकों में आग लग गई!' 'दुश्मन आ गए!' दफ्तर छोड़ कर, स्कूल छोड़ कर, घर-बार छोड़ कर, लोग अपनी जान छोड़ कर इधर-उधर भाग रहे थे। मृत्यु के भय ने उस समय मनुष्य की बुद्धि छीन कर उसे पशु-पक्षी की श्रेणी में लाकर छोड़ दिया था। तीन-तीन, चार-चार मील के फ़ासले के लिए टैक्सी और विक्टोरिया वाले पचास-पचास और साठ-साठ रुपए मांग रहे थे। तीन सौ और चार सौ तक देने की अफवाहें हवा में फैल रहीं थीं। जी. आई. पी. लोकल ट्रेन बन्द, ट्राम बन्द, बसों को फुरसत नहीं, ज़ख्मियों को अस्पतालों में पहुँचाने के लिए पुलिस मोटर वालों से मोटरें उधार मांग रही थी, बी० बी० सी० आई० की लोकल गुच्छों की तरह आदमियों से लदी दनादन छूट रहीं थीं। हर आदमी उस वक्त जल्द से जल्द अपने घर पहुँचने की बेकली को लिए पागल-सा हो रहा था।

'प्रिंसेज़ डॉक में आग लग गई! गोले-बारूद से भरा हुआ जहाज फट गया! डॉक का डॉक उड़ गया!'—खबरें आने लगीं थीं।

---

† मराठी में चेष्टा शब्द का प्रयोग मज़ाक़ के अर्थ में किया जाता है।

आसमान पर हमारी सरकार के दो-चार हवाई-जहाज़ चक्कर लगा-लगा कर हमें जापानी हवाई हमले के भय से मुक्ति दे रहे थे।

अफवाहें घरों में घर कर गईं थीं, । बम्बई के घरों में औरतें अपने बच्चों और घर वालों की राज़ी-ख़ुशी जानने के लिए बेकली के साथ बालकनी, खिडकियों, दरवाज़ों और गली-सड़कों में लदी हुई थीं।

तेंतीस करोड़ देवी-देवताओं की कृपा से मिठाई वालों को धड़ाके के बाद (उसके परिणामस्वरूप) इस 'नए जनम' में अपने मुनाफे और भाव की तेज़ी का ध्यान आने लगा था ।

दूध वाले उत्तर-हिन्दुस्तानी 'भैया' चाय के लिए दूध के साथ-साथ उड़ती हुई खबरें भी ला रहे थे। 'अरे बाई, क्या बतावैं, चार जपानी रहे-हुआँ के बड़े-बड़े अपसर। का जानी कौन जुगत से जहाज में घुसि गये। बड़का कुम्भकरनी जहाज! कल रात में कौनों बखत आवा रहा। लाखों तोप, बंदूक और गोला-बारूद से चिकार भरेला रहा। तौन जो पिटरौल छिड़क कै जो माचिस दिखाइन! कि आपौ उड़ गए, और, अक्खा बंदरगाह उड़ाय डाला बाई। करोड़ौं कुली, बाबू, अपसर, साहेब, मेमैं और मिलटरी के लोग जौन रहिलैं, तौन गेंद अस यौं उड़िगए, यौं!'

बीस-पचीस मिनट बीत चुके थे। अपने प्राणों को सुरक्षित पाकर लोग अब दुनिया की सोचने लगे थे। बारूद के जहाज़ का फटना, वर्तमान महायुद्ध और अँग्रेज़ों के प्रति भारतीयों की भावना से अफ़वाहों के हवाई क़िलों की नींव को मज़बूत बना रही थी। कच्छ की खाड़ी में चार दिन पहले एक जापानी सबमॅरीन का देखा जाना ज़ोर शोर के साथ सिद्ध किया जा रहा था। कोई कहता था चार जापानी; कोई एक जापानी और जहाज़ के चार हिन्दुस्तानी ख़लासियों की वीरता और देशभक्ति के तराने गा रहा था, जिन्होंने अपने प्राण होम कर अँग्रेज़ों की कमर तोड़ दी। एक सज्जन को तो टोकियो रेडियो ने पिछली रात

ही इस होने वाली दुर्घटना की सूचना दे रक्खी थी, साथ ही साथ यह भी बतला दिया था कि गोला-बारूद नष्ट करने के चार दिन बाद सुभाष बोस के नेतृत्व में आज़ाद हिन्द सेना आकर बंबई, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास पर क़ब्ज़ा कर लेगी। निष्क्रिय देशभक्ति के दीवाने चामत्कारिक रूप से देश की आज़ादी का सपना देख रहे थे। डरपोक मारवाड़ी और गुजराती भागेंगे, मकान ख़ाली होंगें—जिन्हें मकान नहीं मिल रहे थे वह यह सोच-सोच कर प्रसन्न होने लगे थे।

उत्सुक और उत्साही लोग घटनास्थल की दशा को अपनी आँखों से देखने के लिए जाने लगे। थोड़ी देर पहले उतावली के साथ भाग कर जाते हुए लोग अब फिर से बाज़ारों में दिखाई पड़ने लगे थे। मौत के डर को आदमी अब तक बस में कर चुका था। आलम के चेहरे पर छाई हुई मुर्दनी अब अस्त होते हुए सूर्य की तरह थी जिससे हर कोई आँख मिलाने का दम भरता है।

तभी—

धड़मऽ ऽ ऽ ऽ ऽ !

पहले धड़ाके से दूनी बुलन्द आवाज, और बिहार क्वेटा के-से भूकम्पों की-सी हालत। नीवें हिल गईं, छतें पटापट गिरने लगीं। दीवारें फट गईं। खिड़की-दरवाजे उड़ने लगे। क्षण भर पहले के गूंजते-गाजते हरे-भरे बाजार चीख़-पुकार, रोने के कुहराम और राम-रहीम के करोड़ों नामों की कब्र बन गए। बाजारों के ऊपर, सड़कों के दोनों तरफ से पंचमंजिली हवेलियाँ अपनी तमाम आबादी, सारे वैभव और सजीवता के चिन्हों को लिए-दिए एक पर दूसरी धड़ाधड़ गिरने लगीं। करीब दस-दस मन तक की फौलादी चादरें बारूद के साथ-साथ जहाज से फट कर उड़ी थीं। आग से लाल फौलाद की बड़ी-बड़ी चादरें बारूद के पूरे जोश के साथ आग और धुँए के पहाड़ को चीरती हुई दो-दो, ढाई-ढाई मील तक उड़-उड़ कर पहुंचने लगीं। बोल्ट कसने के लिए बने

हुए छेदों को हवा बड़ी तेजी के साथ चीरकर सीटियां बजाती हुई निकल रही थी। यह हवाई यमदूत झपट कर जमीन, मकान, इन्सान, जिस पर भी अपने पूरे वजन के साथ गिरे, उसी का सफाया हो गया। खिड़कियों और दरवाजों के काँचों ने उछल-उछल कर सैकड़ों दौड़ते-भागते राहगीरों को बुरी तरह घायल किया। सड़कें और फुटपाथ टूटे काँच के टुकड़ों से भर गये। घायलों की संख्या बराबर बढ़ रही थी। स्कूलों से जख्मी बच्चों के दल के दल बेतहाशा भाग रहे थे। किसी के हाथ से लहू टपक रहा है, किसी का चेहरा लहूलुहान हो गया है। हर एक का चेहरा सफेद। हिस्टीरिया के दौरे में घुट-घुट कर रोता और कराहता तथा अपना धैर्य खोकर भटका हुआ-सा हर एक आदमी दूसरों से धक्कम-मुक्का करता हुआ दिशा ज्ञान-शून्य अन्धों की तरह इधर-उधर दौड़ रहा था। जहाज से उड़े हुए गर्म फौलाद के छोटे-मोटे टुकड़े कितनों को मौत के घाट उतार रहे थे। जान बचाने के लिए लोग मकानों से उतर रहे हैं, जीना टूटा और उसके साथ ही साथ उनके जीवन का सहारा भी टूट गया। परे के परे पटे जा रहे थे। ऊँची-ऊँची बिल्डिगों में रहने वाले परिवार एक पर एक गिरते हैं। ग्राउण्ड-फ्लोर की आबादी पर पहिली मंजिल, दूसरी पर तीसरी, चौथी, पाँचवीं......अपनी पूरी आबादी और सारे बोझ के साथ गिर रही हैं। हर तरफ छटपटाहट और आकाश को भेद कर स्वर्ग तक पहुँचने वाली चीख! चीख!! चीख!!! प्रिंसेज डॉक, मस्जिद बंदर, वाड़ी बंदर, कारनक ब्रिज और मुहम्मद अली रोड के पीछे मुहल्ले के मुहल्ले पट गए। काठ, किवाड़, लोहा लंगर—'जूंड जूंड' की भयंकर गूंज के साथ आग की हजार-हजार लपटें जिस तरफ से बह कर बढ़ गईं वहीं आग लग गई। मलबे में आधे धड़ तक दबे हुए जीव अपने सिसकते हुए प्राणों और शक्ति को समेट-समेट कर बाहर निकालने का निरर्थक प्रयत्न कर रहे हैं और आग की लपटें तभी आगे बढ़कर उन्हें अपना आहार बना रही हैं। सिर अलग, हाथ कहीं जल-जल कर गिर

रहे हैं, प्राण निकलते नहीं, चीखों पर चीखें निकल रही हैं। बारूद का दम घुटाने वाला धुंआ और आग की तमक कहीं जीने की लालच में गिन-गिन कर सांसें लेने वालों का मोह तोड़ रही है, और कहीं अग्नि-देव स्वयं मृतकों का दाह संस्कार कर रहे हैं।

अफवाहों की गति से आग तेजी पकड़ रही थी। सुना, जैसे ही जहाज फटा, डॉक पर काम करने वाले सैंकड़ों हिन्दुस्तानी कुली और विलायती अफसर डॉक के साथ ही हवा में उड़ गए और ऊपर से उनके अंग-अंग कट-कट कर गिरने लगे। उनकी लाशें समुद्र को पाट कर मुर्दों का एक दूसरा डॉक बनाने का प्रयत्न करने लगीं।

सुना, किनारे के गोदामों में भरा हुआ हजारों मन गल्ला जल कर भस्म हो रहा है, रुई जल रही, नारियल और मूंगफली के गोदाम जल रहे हैं।

जलने वाले क्षेत्र से दूर बम्बई वालों के दिल जल रहे थे।

जहाज पर काम करने वाले कुलियों के घरों में आँखों से बहते हुए अविरल आँसुओं की धार और धड़कते हुए दिलों से अपने-अपने आदमियों के लिए प्रतीक्षा की जा रही है। ज्यों-ज्यों अंधेरा बढ़ता जाता है, निराशा भी बढ़ती जाती है। कुछ बचकर भी आ गए थे; उनके घरों का संतोष दूसरों के घरों को और भी खाये जा रहा है। किसी की माँ रो रही है, कहीं पत्नी, किसी के बच्चे, बूढ़े माँ-बाप, दोस्त-अहबाब, सगे-सम्बन्धी, सब अपनों के लिए रो रहे हैं। उत्तर-पूरब के कोने में आसमान तक फैली हुई आग को आँसुओं की लाख-लाख बूंदें बुझा कर उसमें से अपने आत्मीयों को खोज निकालना चाहती थीं।

जले हुए मकानों से बच कर निकल आने वाले सौभाग्यशाली परिवार बम्बई के फुटपाथों पर, सार्वजनिक हालों में, जनरल

पोस्ट ऑफिस के अहाते में, धर्मशालाओं में और दयालु प्रकृति के लोगों के घरों में आश्रय पा रहे थे।

घरबार वाले सुरक्षित लोग आग का तमाशा देखने और दैवी प्रकोप से पीड़ित जीवित और मृत परिवारों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने निकले थे।

रात के दस बज रहे थे।

रात के अंधेरे में मीलों तक आसमान लाल दिखाई दे रहा था। हर एक की जबान पर आग की चर्चा थी, और हर एक के दिलों में आग की दहशत थी।

अस्पताल जख्मियों से भरे पड़े थे। मुर्दों को अलग कमरे में रखवा दिया जाता था। अस्पतालों के बाहर उन लोगों की भीड़ें जमा थीं जो अपने खोये हुए स्वजनों की तलाश में आए थे। डॉक्टर जख्मियों में दिखला देते हैं, वहाँ न हो तो मुर्दाघर में जाकर देख लो। सात-पैंसठ बरस का एक बूढ़ा पारसी भीड़ से बच कर अस्पताल से बाहर निकला। उसकी शोकाकुला वृद्धा पत्नी व्यग्र होकर आगे बढ़ी। आँखों में आंसू भरे, टूटी हुई आवाज में मुंह फेर कर पारसी बोला : 'नथी।'

बुढ़िया हृदय को कठोर बनाने का प्रयत्न करते हुए एक पल भर तो चुपचाप रही, फिर जबान पर न आए मगर मन का कौतूहल पूछे, इस तरह काँपती हुई आवाज में पूछा: 'पेला मुर्दाघर माँ····' जबान रुक गई।

वृद्ध अपने को रोक न सका। रोते-रोते उसने कहा: 'मेहर, वहां तो हजारों के बच्चे मुझे अपने मीनू से ही लगते हैं। मुझसे तो वहाँ नहीं देखा जाता।'

·· ·· ·· ··

दिन बीतते गये। आग बुझती गई। अपनी गोद में मुर्दों की बस्ती लेकर बम्बई फिर अपनी बची-खुची आबादी के साथ आगे बढ़ने लगी। चौदह अप्रैल को बीते हुए बारह दिन हो चुके हैं। मलबा हटाया जा रहा है। लाशें निकाली जा रही है। जगह-जगह मलबों में दबी, जली हुई लाशों की चिरांध दूर-दूर तक भभके ले रही है। दूर-दूर तक जले हुए मकांनों की नंगी दीवारें कंकालों की तरह अपने बीते हुए 'कल' की याद दिलाने के लिए खड़ी हैं। कहीं टूटा हुआ जीना नजर आ रहा है, कहीं एक लटकती हुई छत। एक जगह ऊंचे पर, दीवाल में लगे हुए नल की टोंटी पर किसी ने शायद बाल्टी भरने के लिए टांगी थी। एक जगह डोरी में बंधी एक धोती हवा में फहराती हुई नजर आई। एक चार मंजिले मकान की पुताई हो रही थी. उसका पीछे का हिस्सा खंडहर हो चुका है। सामने की दीवाल में बंधी हुई पाड़ वैसी की वैसी आज भी दिखाई देती है। ऊपर का हिस्सा पोत कर मजदूर तीसरी मंजिल पर काम कर रहे थे। आधी दीवाल पुत चुकी थी। चूने की बाल्टी अब भी वहां बंधी है। एक विश्रान्तिगृह की छत वग़ैरा टूट चुकी थी, मगर उसका थोड़ा-सा हिस्सा आज भी अपने बीते दिनों की व्यस्तता का परिचय देने के लिए सुरक्षित है। दीवाल पर दो रंगीन तस्वीरें दिखाई पड़ती हैं, एक महात्माजी की दूसरी सुभाषचन्द्र बोस की। संगमरमर की गोल मेजें कुछ लुढ़की और टूटी हुई पड़ी हैं और कुछ अपनी जगह पर वैसे ही मौजूद हैं। मालूम होता है कि अपनी जान बचाने के इच्छुक विश्रांति-हाल के मालिक और नौकर साजोसामान की टूट-फूट और नुकसान का क़तई ख़याल न कर अपने रास्ते में आनेवाली मेज़-वेज सब को ढकेल कर रेस्तरां खुला छोड़ कर भागे थे। सारे फर्श में चाय के प्याले बिखरे हुए नज़र आते थे।

पुलिस की निगरानी में लोग टूटे हुए मकानों में दबी हुई चीज़ों

को पहचान-पहचान कर निकालने में व्यस्त हो गए हैं। मलबे-मिट्टी और पानी से सने हुए अनाज के बोरों को गोदामों में से निकलवा निकलवा कर सेठ लोग दूसरी जगह रखवाने का प्रबन्ध कर रहे हैं। एक मराठी मजदूर अपने दूसरे साथियों के साथ गोदाम से बोरे निकाल-निकाल ठेले पर लादते हुए, एक सेकंड अपने सामने दूर तक फैले हुए खण्डहरों को देखकर भावावेश में कुछ अपने आप और कुछ अपने साथियों को सुनाता हुआ बोला, 'केवढ़ी मोट्ठी आग लागली होती हो!'

पीछे से सेठ चिल्लाया : 'अच्छा, अच्छा, लगी होगी। चलो अपना काम करो।'

बम्बई फिर अपने काम में लग गई है। उसे कल की बीती हुई बात सोचने की फुरसत आज नहीं।

(१९४४)

सूखी नदियाँ

इंगलैंड जाते हुए एक हवाई जहाज आल्प्स की पर्वतमाला से टकरा कर तबाह हो गया है. यह खबर अखबारों में छप कर सबेरे की चाय के साथ मिसेज अहमद के पलंग पर पहुंच गई। और इस खबर को लेकर मिसेज अहमद आधे मिनट के लिए सक़ते के आलम में पहुंच गईं। अहमद इसी जहाज से इंगलिस्तान गए थे। मिसेज अहमद का नन्हा-सा नाजुक दिल दहल गया। चीख कर रोने या बेहोश हो जाने को जी चाहा, मगर कमरे में कोई मौजूद न था। मिसेज अहमद की नजरों के सामने वह वक्त आ गया जब अहमद ने चलते वक्त एयरोड्रोम में अचानक उनका आखिरी चुम्बन 'चुराया' था। आसपास खड़े सभी दोस्त-अहबाब—मिस्टर, मिस, और मिसेज—हंस पड़े थे। ..कैसा मोहक नजारा था! कितना मादक!

यह चुम्बन मिसेज अहमद को इस वक्त भी अपने होठों से चिपका हुआ महसूस हुआ। दिल की दहलन में 'रोमान्स' की गुदगुदी रेंग गई, ज्यों बरफ में गरमी दौड़ी हो। होठों पर आई भीनी मुस्कान को मिसेज अहमद ने बड़ी चाह के साथ प्याले के गर्म घूंट से दबा लिया—"अहमद, माई पुअर अहमद!"—दर्द को चाय के गर्म घूंट के साथ वह दिल की गहराइयों में उतार ले गईं।

और उन्हें खयाल आया कि आलम को उनके दर्द की खबर मिलनी चाहिए। फौरन ही मलाबार हिल का वह खुशनुमा फ्लैट अपनी मालकिन की पियानो के सुर जैसी चीख से गूंज उठा। बैरा, बाय, आया, टामी सब के सब कमरे में घिर आये। देखा कि मेम साहब अखबार को कलेजे से दबाये तकिये पर सिर डाले बेहोश पड़ी हैं।

सबको कमरे में देखकर मिसेज अहमद को होश आ गया। बड़ी-बड़ी खूबसूरत आँखें खिड़की के सामने हहराते समुद्र के ज्वार-सी उछल उठीं, और उन्होंने गम को तस्वीर की तरह फ्रेम में बाँध कर अपनी रिआया के सामने इस तरह पेश किया गोया प्रेस-मैनों से कह रही हो, "तुम्हारे साहब अब नहीं रहे।"

यह कहकर मिसेज अहमद फिर बेहोश हो गईं।

(२)

जमाने को दौड़ने में देर लगती है, मगर मिसेज अहमद के ग़म की इस खबर को उनके दोस्त-अहबाब तक दौड़ कर पहुंचने में देर न लगी। दिन भर दोस्तों और टेलीफोन की घंटियों का ताँता बंधा रहा। शाम तक मिसेज अहमद की एक-एक आह, सिसकी, आंखों में आँसू लाने वाली बातें, अहमद के साथ अपने पहले मिलन, प्रेम, शादी, हनीमून और एयरोड्रोम के आखिरी चुम्बन तक की बातों के साथ तरतीबवार सध गईं। देखने वाले सब एक मुंह से यही कहते थे: "ओह! बेचारी मिसेज अहमद का दुख तो देखा नहीं जाता।"

मिसेज गुलशन भरूचा ने कहा: "जोने! आक्खो ढारो ठई गियो। बेचारी ने कुछ भी नहीं खाया—पुअर मिसेज अहमद! कैसा ढोक्का दिया है टकडीर ने!"

मिस्टर फीरोज भरूचा ने आगा हश्र काश्मीरी के ड्रामे पढ़-पढ़ कर अपनी जबान को पारसी से फ़ारसी बनाया है, और उसकी अदायगी में सोहराब मोदी से टक्कर लेते हैं। मिसेज अहमद के दुख पर अपनी मिसेज की पारसी-हिन्दुस्तानी का 'ढोका' उन्हें पत्थर के ढोके की तरह लगा। तड़प को नाटक के ढंग से संवार कर सधी हुई बुलन्द आवाज में बोले "धोखा नहीं! कहना चाहिये कि उससे भी जियादह!

(आह के साथ) किस्मत की खूबी देखिये टूटी कहाँ कमन्द ।
दो चार हाथ जब कि लबे बाम रह गये ।

अगर टूटना ही था तो इंगलैंड की सरसब्ज जमीन से टकरा कर टूटता । कम-अज-कम हम लोग अपने दोस्त के आखिरी वक्त पर पहुंच कर उनकी लाश पर अपनी मुहब्बत के चार फल तो चढ़ा सकते ! मगर अफसोस !"

मिसेज अहमद कुछ देर से सोफे के सिरहाने पर अपनी बेजान गर्दन डाले, आँखों को हाथ से ढँके हुए पड़ी थीं । मिस्टर भरूचा की बात उनकी कल्पना की हर सतह को छूकर रोमानी खयाल की रंगीनियों से भर गई । तुरन्त उत्साह में भर कर बोलीं, "ह्वाट ए नाइस आइडिया ! काश कि ऐसा होता ।.. बर्फ से ढके हुए कब्रिस्तान में जब इतने हिन्दुस्तानी मिल कर अपने बिछुड़े हुए साथी को आखिरी 'आनर्स' देते, तब इंगलैण्ड वालों को मालूम होता कि हमारे कौमी जजबात क्या होते हैं ! अहमद की मौत एक नेशनल हीरो की मौत की तरह याद की जाती । माई पुअर अहमद ! माई पुअर अहमद ! अब जिन्दगी भर के लिए उसकी याद एक दाग बन कर मेरे दिल में रह जायगी । किसी सूरत से भी न भुला सकूंगी---कभी भी भुला न सकूंगी ।"

मिसेज अहमद की बड़ी-बड़ी खूबसूरत आंखें आसुओं से नहा कर और भी खूबसूरत लगने लगीं, जिन्हें देख कर मिस्टर रबड़-वाला का दिल पंक्चर हो गया । उनके सोफे की बांह पर आकर बैठते हुए, उनके सिर को बड़े भाव से थपथपाकर बोले : "इतना गम न करो विमी । तुम्हारी तन्दुरुस्ती खराब हो जायगी ।"

आप ठीक कह रहे हैं मिस्टर रबड़वाला"---भरे बदन के, गंजे अधेड़ मिस्टर भड़कमकर संजीदगी का अवतार बनकर आगे बढ़े---"विमला अगर इतना रंज करेगी तो इसे टी० बी० हो जाने

का डर होगा। अभी तो बेचारी वर्मा के 'डायवोर्स-केस' से अपने मन को भी सम्हाल न पाई थी कि यह दुख इसके सिर पर पड़ गया। कहावत है मराठी में कि 'चुलींतून निघूत वैलांत पडणे'—एक संकट से निकले कि दूसरे में पड़ गये।"

मिसेज अहमद ने बड़ी तड़प के साथ अपने लिए उछाली गई सहानुभूति को 'कैच' कर लिया। जज्बात फिर आंखों में झलक पड़े। अल्फाज़ के साथ-साथ आह दिल से बाहर निकली: "आप सच कहते हैं मिस्टर भड़कमकर ! मेरी तमाम जिन्दगी ही एक दुख की कहानी है, दर्द का नग्मा है, एक ऐसी शमा है जिसे नसीब की आँधियां जलने से पहले ही बुझा-बुझा डालती हैं।"

"ए पोएटेस ! ए डिवाइन फ्लेम !" मिस सोमा कापड़िया यों चहचहा उठीं, गोया पिंजरा तोड़ कर बुलबुल भागी हो। बेचारी की पूरी शाम एक मातमपुर्सी को लेकर बेरौनक हुई जा रही थी, और यह खयाल अब तो उनके मन पर मातम बन कर छाने लगा था। मिसेज अहमद के कविता भरे बखान ने उन्हें मौका दिया, और चट से बात को मिस्टर अहमद की मौत से मिसेज अहमद की कविता की तरफ मोड़ कर बड़े जोश के साथ बोलीं, "मैं बाजी लगाकर कह सकती हूं कि अपने प्रियतम की इस ट्रेजिक मौत से इंसपिरेशन लेकर विमला एक ऐसा मास्टरपीस महाकाव्य लिख सकती है जो कि शाहजहाँ के ताजमहल से भी ज्यादा ठोस, और रोमियो जूलियट की प्रेम-कहानी से भी ज्यादा महान् साबित होगा।..ओफ ! मिस्टर वर्मा की जेलर जैसी उस कड़ी निगरानी और सख्तियों में विमला का अहमद के लिए तड़पना ..मैं क्या भूल सकती हूँ वह दिन ?—तब एक दिन ऐसी ही आँसुओं से धोयी आँखों से मुझे देखकर इसने मेरे दिल में प्यार के पर्दे खोले थे। कहा था, मुझे इन सख्तियों में वही सुख मिलता है जो

लैला को मिला था। अब फिक्र क्या ? दिल जिसका था, उसे सोंप चुकी। अब तो उस खाली जगह पर पत्थर रख लिया है—जिसका जी चाहे चोट करे।"

कमरे में चारों तरफ से वाह्-वाह् के झोंके आने लगे। मिस्टर रबड़वाला को तो जज्बाती हिस्टीरिया का दौरा ही उमड़ आया। सबके बाद तक झूम-झूम कर वाह्-वाह् करते रहे। फिर एक गहरी साँस डालकर आँखें ऊपर को चढ़ा लीं। मिस्टर भरूचा, मिस्टर भड़कमकर, मिस्टर फ़ाँसिस जोशी, मिसेज कैथराइन (कैंथरआइडीन) जोशी, मिसेज गुलशन भरूचा—सभी मिस्टर अहमद को भूलकर मिसेज अहमद के शायराना दिल की झोली के भिखारी बन गए।

मिसेज अहमद ने मौके की रानी का सिंहासन बड़ी संजीदगी के साथ सम्हाला। उनके दुख भरे चेहरे पर हल्की मुस्कान इस तरह खिली जैसे घटाटोप बदली के भीतर झाँक जाने वाली बिजली फबती है। बेसंवारे हुए बालों पर मुलामियत से हाथ फेर कर कहा : "क्या सुनाऊँ, मेरा सुनने वाला तो आल्प्स की बर्फ़ीली चोटियों में सो रहा है।"

मिस्टर रबड़वाला की सर्द साँस कमरे मे गूंज उठी। मिसेज अहमद ने हमदर्द निगाहों से उनकी ओर देख लिया। नजरें मिलाकर मिस्टर रबड़वाला का गमगीन सिर नीचा हो रहा, और मिसेज अहमद ने कहना शुरू किया; "गो हौंसला नहीं, मौका भी नहीं, मगर आप इसरार करते हैं तो एक कविता सुनाती हूँ। यह मेरे अहमद को बहुत पसन्द थी।"

सुननेवालों ने कविता की अगवानी में सूनेपन के फूल बिखेर दिये। मिस सोमा कापड़िया फौरन ही पियानो के स्टूल की ओर लपकीं। मिसेज अहमद ने यों घबरा कर सावधान किया जैसे कि मिस सोमा छत से नीचे ही टपकने जा रही हों। बोली : "ना !

ना सखी! आज की रात साज न छेड़..मेरे अहमद की रूह लरज जायेगी।"

मिसेज अहमद के दर्द की गहराइयों से निकली हुई इस बात पर वाह-वाह के छींटे उड़े, हाय-हाय की बौछरें पड़ीं, और मिसेज अहमद की कविता चमकी :

ओ मेरे प्यार के गीत!—
ओ मेरे मन के मीत!
चुप हो!

खामोश जरा—देख तो कौन आता है।
विरह का राक्षस खूंख्वार बना धाता है।
आ मेरे मीत तुझे दिल में छिपा लूं अपने,
(कि) इसमें पलते ह तेरे ही सुखों के सपने।
चुप हो ढीठ—मेरे गीत जरा तो चुप हो।
दिल से दर्द गया जीत, जरा तो चुप हो।
(अरे) सुख के दिन गए बीत, जरा तो चुप हो।
प्रीत में हो रही अनरीत, जरा तो चुप हो।
तू ये कहता है कि प्यारे का पयाम आता है।
अरे दिल सब्र कर, बस, सुबहोशाम आता है।
नहीं यह जानता अंजामे मुहब्बत की तरह—
विरह का राक्षस खूंख्वार बना धाता है।
चुप हो! खामोश जरा—देख तो कौन आता है।
ओ मेरे प्यार के गीत! ओ मेरे मन के मीत!

टैगोर, टी० एच० इलियट, इकबाल, बायरन, कीट्स, शैली, मिल्टन तक सब कवियों की फहरिस्त खत्म हो गई, मगर मिसेज अहमद की कविता की तारीफ खत्म न हो सकी। मिसेज कैन्थर-आइडीन ने तो मोपांसा, वैन गाग और पिकासो की कविताओं

की तरह इस कविता को भी सदा याद रखने लायक चीज करार दे दिया। मिस्ट रबड़वाला ने ऐतराज उठाया कि इन तीनों नामों में से एक भी कवि नहीं। इस पर मिसेज कैन्थर-आइडीन बिगड़ गईं। उन्होंने 'कोन्तीनेन्तल कुल्चर' पर एक गरम लेक्चर दे डाला, जिसके हिसाब से लेडीज की कोई बात काटना शराफत का बड़े से बड़ा जुर्म है। मिस सोमा कापड़िया पिछले साल ही यूरोप की सैर करके लौटी हैं। उन्होंने मिसेज कैन्थर-आइडीन की 'कोन्तीनेन्तल कुल्चर' की जानकारी का मजाक उड़ाया। इस पर मिसेज कैन्थरआइडीन का चमक उठना भी लाजिमी था। और चूंकि इधर कई महीनों से मिसेज कैन्थरआइडिन की चमक का मिस्टर भड़कमकर पर खास असर पड़ता है, लिहाजा उनका भड़क उठना लाजिमी था। मिस सोमा की तरफ से बहस करने वाला कोई यहां मौजूद न था, मगर चूंकि बड़े बाप की बेटी है इसलिये वह खुद अपने तजुर्बे के बल पर वकालत करने लगीं। मिसेज भरूचा ने जरूर उनकी हर बात पर जोरदार 'हां' की शह दी, और वह भी इस तरह कि जैसे वह खुद भी 'कोन्तीनेन्त' की सैर कर आई हों। मिस्टर भरूचा ऐसी कुल्चरल लड़ाइयों के वक्त हमेशा से अपनी 'साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्री-यल सप्लाईज लिमिटेड' के सिलसिले में कुलावे भिड़ाने के आदि हैं। इस वक्त भी उसी में मसरूफ हो गए। मिस्टर फ्रांसिस जोशी को अपनी चमकदार मिसेज की तरफदारी करने के बजाय उम्र पचपनसाला की झपकियों में ज्यादा रस मिलता है। वे उसी रस में डुबकियां लेने लगे।

मिसेज अहमद इस वक्त मातम के मूड में थीं। मिस्टर अहमद की इस अचानक मौत ने उनके दिल में एक जगह खाली कर दी थी। उसमें सूनापन और आनेवाले कल की चिन्ता भर रही थी। उन्हें अहमद की

माली हालत का सही-सही अंदाज तो शादी के इन आठ महीनों में भी न हो सका था, मगर इतना वह जरूर समझ रही थीं कि बैंक में दस पांच हजार से ज्यादा रकम न होगी। एक बिजनेस फर्म के मैनेजर और छोटे पत्तीदार के पास आखिरकार हाथी घोड़े तो बंध नहीं सकते। फिर उनकी रोजमर्राह की जिन्दगी काफी खर्चीली थी। इन्हीं सब उखड़े से खयालों को लेकर वह मन-ही-मन अपनी थकान से जूझ रही थीं। मेहमानों पर गुस्सा आ रहा था जो उन्हें अकेली छोड़कर आपस में जूझ रहे थे। मिस्टर रबड़वाला की तरफ ध्यान गया। वे हमदर्द निगाहों से उन्हें ताक रहे थे।

मिस्टर रबड़वाला को मिसेज अहमद के दुख से दुख हो रहा था। वे उस जमाने से मिसेज अहमद की कद्र करते हैं जब वे मिसेज वर्मा थीं। उनके और अहमद के रोमांस की गर्म चर्चा के दिनों में उन्हें रह-रह कर अहमद पर एक खामोश किस्म का रश्क होता था। अपने ऊपर पछतावा भी आता था कि वे सोसायटी की किसी प्रेम-कहानी के हीरो न बन सके। अपनी किस्मत पर भी अफसोस होता था जिसने उन्हें अहमद की तरह पुरमजाक, हाजिर जवाब, चुस्त, चंचल और लेडी किलर न बनाया। वे अहमद की नकल करने की भरसक कोशिश भी किया करते थे। और जब अहमद के साथ शादी हो गई तो वे मन-ही-मन अपनी 'हीरोइन' के और भी नजदीक सिमट आये थे। इस वक्त भी जब उन्होंने मिसेज अहमद को बहस में हिस्सा लेते न देख खामोश और उदास देखा तो खुद को भी कमरे की कुल्चरल फिजां से समेट लिया। सिर झुका कर बैठ रहे। बीच-बीच में उदास आंखें उठा कर मिसेज अहमद को देख लिया करते थे। जब नजरें मिल जाती थीं तो उनको राहत होती थी। और नजरें मिल ही जाती थीं—खयाल आ ही जाता था।

कमरे के कुल्चर में जब कोन्तीनेन्त के मुकाबले में अपने 'कुंभी' की

जहालत फैली, मिस सोमा कापड़िया ने जब पुरानी कारतूसों से नये कुल्चर का निशाना बेधने की कोशिश करने पर हंस-हंस कर एतराज किये, तब मिसेज कैन्थरआइडीन के ऊपरी कुल्चर की खुशबू उड़ गई। वे अपनी अस्लियत पर आ गईं।

और मिसेज अहमद को गश आ गया: "अहमद ! माई पुअर अहमद ! मैं तुम्हारे बिना कैसे जी सकूंगी....।" बेहोशी में ही वह रह-रह कर बड़बड़ाने लगीं, दर्द से घुटने लगीं।

मिस्टर रबड़वाला फिर लपक कर मिसेज अहमद के सोफे पर पहुँच गए। उनके सिर और कंधे पर दोनों हाथ रख कर नौकरों को यू-डी-कोलोन लाने के लिए पुकारने लगे।

सबको मिस्टर अहमद की मौत पर नये सिरे से अफसोस होने लगा।

मिस्टर भड़कमकर ने भरी आवाज में कहा: "प्रेमी की मौत प्रेमिका के लिए खुद अपनी मौत से भी ज्यादा तकलीफदेह होती है। ....बेचारी विमला ! इन अवर मराठी दे से कि अल्लाकी गाय ! .....हा: !"

मिसेज कैन्थरआइडीन मिस्टर भड़कमकर की बांह से सटकर खड़ी हो गई, फिर निसांस डालकर कहा: "ओह ! बेचारी मिसेज अहमद का दुख तो देखा नहीं जाता !"

(३)

थके हुए मन को बल देने के लिए, मिस्टर रबड़वाला के इसरार करने पर, मिसेज अहमद ने दो तीन पेग भी ले लिए, कुछ मुंह भी जुठला लिया। खाना खाकर दोनों मिसेज अहमद की आरामगाह में आकर बैठ गए। ब्वाय मेज पर जरूरी सामान सजाकर रख गया। मिस्टर रबड़वाला ने सिगरेट एश-ट्रे के किनारे पर रखकर बोतल गिलास सम्हाले। मिसेज अहमद ने धुंआ छोडते हए कहा: "मेरे लिए अब नहीं।"

"क्यों ?"

"नहीं....कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। लगता है कि उम्र के दूसरे सिरे पर पहुँच गई हूँ।....न उम्मीद....न अरमान ....न सुख, न दुख....दिल का हर मेहमान दिल से दूर गया.... कुछ धड़कनें बची हैं जिनका किसी से भी कुछ लगाव नहीं, बस अपना फर्ज अदा करती हैं....!"

मिसेज अहमद अपने दर्द में खो गईं। मिस्टर रबड़वाला भी कुछ देर तक खामोश रहे, फिर कहा: "अपने जी को इतना न गिराओ विमी। धीरे-धीरे यह दुःख भी भूल जाओगी। मन को कहीं न कहीं से जरूर शान्ति मिलेगी।"

"शान्ति !" मिसेज अहमद ने फिल्म देवदास के हीरो की तरह हँस कर कहा: "प्रेम की राह पर चलने वालों की जिन्दगी में शान्ति नहीं आया करती, रबड़वाला ! जो खुद ही अपने तन में आग लगाता है उसे तो मर कर ही शान्ति मिलती है ।"

"तुम पागलपन की बात कर रही हो विमी।"—मिस्टर रबड़-वाला ने अचानक स्वर्गवासी अहमद की तरह ही आवाज में जोर और झटका लाकर कहा: "लो! –लो!..योर हैल्थ—योर प्रोस्पैरिटी!"

मिसेज अहमद की आंखों में छेड़ की अदा चमकी, होठों पर मुस्कान खेल गई जो दिन भर के दर्द से अछूती थी।

मिस्टर रबड़वाला के सारे शरीर में बिजली का करेंट दौड़ गया। यह दूसरा मौका था जब उन्हें अपने ऊपर घमंड हुआ। चचा के मरने पर उनके वारिसदार होकर अपनी फर्म के दफ्तर में प्रोप्राइटर की कुरसी पर जब वे पहली बार बैठे थे तब मन-ही-मन फूले थे; और दूसरी बार आज, अपने डेढ़ वर्षों की तपस्या के फल को मिसेज अहमद की इस एक झलक में पाकर। यह झलक

इसलिए और भी अनमोल थी कि उन्हें किसी औरत ने पहली बार इस तरह अपनापन देकर देखा था। सोसायटी की हर सरनाम मिस और मिसेज से लेकर मिसेज अहमद तक ने उन्हें महज ईडियट, महज खिलौना ही माना।

खुशी से जोश में आकर मिस्टर रबड़वाला ने एक ही साँस में अपना गिलास खत्म कर दिया। दूसरी सिगरेट जलाकर शान से एक कश खींचा, टाँगें फैलाईं, और हीरोशाही की अदा में इतमीनान से कहने लगे : "मैंने यह देखा है विमी कि इंसान बड़े से बड़ा दुख भी धीरे-धीरे भूल जाता है। जिंदगी जहाँ ठोकरें मारती है वहाँ सहारा भी देती है। मैंने खुद अपनी जिंदगी से ही यह सबक सीखा है। और मैंने यह भी जाना है कि जिस चीज को मैंने चाहा है उसे पाया भी है। और इसीलिये मुझे अपने ऊपर पूरा भरोसा भी है।....",

मिस्टर रबड़वाला की बकवास लम्बी होती गई।

मिसेज अहमद अपनी एक अदा दिखा कर फिर खामोश हो गईं थीं। बीच-बीच में एक-दो घूट पीकर धीरे-धीरे सिगरेट के कश खींच लेती थीं। अपने खयालों में रम गई थीं। उनके मन में आज और कल की गहरी कशमकश चल रही थी। अहमद का ख्याल बार-बार चुभ कर इस बात का एहसास कराता था कि आने वाले कल के लिए उन्हें किसी का सहारा चाहिए। अपनी पैनी सूझ के मुताबिक वह इस नतीजे पर पहुंच रही थीं कि सोसायटी के अन्दर आजाद होकर घूमने के लिए 'मिसेज' का टाइटिल जरूरी है। और यह चाहती थीं कि उनका मिसेजपन कहीं नये सिरे से इन्श्योर्ड हो जाय जिससे कि मातम का साल पूरा होते न होते वे आगे के लिए बेफिक्र हो जायं। इस बार वो किसी ठोस पैसे वाले को अपना प्रेम देंगी। महज प्रेम करने के लिए ही प्रेम नहीं करेंगी। और भूले से भी वर्मा जैसे पति के पल्ले नहीं

बंधेंगी। ।——वर्मा तंदुरुस्त खयालों के, सीधे, सधे, भले आदमी हैं, प्रोफेसर हैं। हर बात उनके लिए मानी रखती है, और हर मानी पर वह ध्यान देते हैं। हंसना, बोलना, मजाक करना, सैर-सपाटा, खेल-कूद उन्हें सब कुछ खूब पसंद है, मगर अपनी या किसी की भी जिन्दगी को गेंद की तरह उछालना उन्हें कतई पसन्द नहीं। तमाम हंसी-तमाशे के बावजूद जीवन उनके लिए एक गम्भीर चीज है। ——मिसेज अहमद इस गम्भीरता का मान भी करती हैं, और साथ ही साथ वह उससे चिढ़ती भी हैं, नफरत करती हैं। जिन्दगी जब उनके सामने कोरा खयाल बनकर आती है तो बड़ी पवित्र, गम्भीर और सुहावनी होती है; मगर असलियत में वह उनके लिए एक खेल है, दबने और दबाने के दांव-पेचों का अखाड़ा है।

बचपन से उन्होंनें यही जाना है। विधवा माँ अच्छे खानदान का मगर मुसीबत की मारी, एक बड़े बैरिस्टर के बंगले पर रसोईदारिन का काम करती थीं। बैरिस्टर साहब बड़े शरीफ थे। अपनी रसोईदारिन से गुनाह का रिश्ता भी उन्होंने बड़ी शराफत और इज्जत के दामन को सम्हाल कर बाँधा था। विमला को भी उन्होंने अपनी लड़की की तरह पढ़ाया, लिखाया, पहनाया, उठाया। उनके एक लड़के और भतीजे ने अपने यहां पलनेवाली रसोईदारिन की खूबसूरत और नौजवान लड़की से अपने खान्दान के एहसानों की मनमानी कीमत वसूल की। इसी दबाव के 'री-एक्शन' में उन्हें शादी की पवित्रता का एहसास हुआ था; और शादी की पवित्रता के 'रीऐक्शन' में 'फ़्री लव' का।

जिन्दगी अब फिर नए सिरे से शुरू हो रही है। इसमें उन्हें शादी की जरूरत है, फ़्री-लव की जरूरत है, पैसा, हुकूमत और आराम की जरूरत है। अपनी तमाम जरूरतों को साफ-साफ समझकर वह अब एक ऐसा पति चाहती हैं जो कि आड़ भी बन जाय,

और कभी उनकी मर्ज़ी के आड़े भी न आये। उनका खयाल है कि रबड़वाला ही ऐसा पति हो सकता है। मगर वह जबरदस्ती नहीं करना चाहतीं। अभी तो उनके पास अहमद के मातम का पूरा एक साल पड़ा है। तब तक वह परख लेंगी। मगर तब तक के लिए पैसों और आराम की कमी न आये इसलिए फिलहाल चारा भी डालती चलेंगी। रबड़वाला बुद्धू है, मगर घमंडी है, इसलिए उसे दुतकार-दुतकार कर अपने पास बुलायेंगी।

इन गहरी स्कीमों को डूबते-उतरते हुए भी मिसेज अहमद को यह खयाल बना रहा कि अहमद के लिए उनके दिल में कहीं टीस भी बराबर ही उठ रही है।..प्यारा आदमी था, उन्हें प्यार भी करता था। वो भी प्यार करती थी। उस प्यार में एक तेजी थी, सचाई भी थी जो अब बिखर रही है। यह भी मिसेज अहमद को अच्छा नहीं लगता। पूरी जिद के साथ वह उस सचाई को बटोरना चाहती हैं; अपने प्यार की तड़प को लेकर घुटना चाहती हैं, उसमें रमना चाहतीं हैं। "..अहमद! माई पुअर अहमद! माई पुअर अहमद!!...."

घुटन की सख्त कोशिश में उनकी बबड़ाहट फट निकली। मिस्टर रबड़वाला की जीत के नशे में सहसा यह उतार आया। बदहवास होकर वे मिसेज अहमद की ओर देखने लगे। उनकी गर्दन एक ओर ढली हुई थी। बन्द आँखों से गंगा जमना बह रही थी। बांयाँ हाथ सिगरेट को थामे सोफे से नीचे लटक रहा था, और दाहिने हाथ से वे अपने घुटने पर टिके हुए गिलास को पकड़े धीरे-धीरे बड़बड़ा रही थीं।

नशे के झोंक में उठकर रबड़वाला उनके पास आये। उनके दोनों गालों को अपने हाथों से दाब कर उनका सिर सीधा कर

उन्होंने कहा, : "विमी ! विमी ! काम योर सेल्फ ! मुझसे अब तुम्हारा दुःख बर्दाश्त नहीं होता । मैं—"

"गेट आउट ! चले जाओ यहाँ से । मुझे अकेली छोड़ दो.. मुझे मेरे अहमद के खयाल में खो जाने दो—मर जाने दो ।"

मिसेज अहमद ने इतने जोर से डांटा कि मिस्टर रबड़वाला का सारा नशा हिरन हो गया। वे सहम गए। लगा कि तीर बहुत दूर निकल गया। वे घबरा कर जल्दी से पीछे हटने लगे। पैर लड़खड़ा कर मेज से अटका। वे भी उलटे, मेज भी उलटी ! बेचारे के मुंह से एक हलकी-सी चीख निकल ही गई।

मिसेज अहमद को भी एसहास हुआ कि उनका तीर बहुत दूर निकल गया। फौरन ही खयाल से अस्लियत में आईं। लपककर रबड़वाला के पास आईं। उनके ऊपर झुककर, उनके चेहरे और सिर पर हाथ फेरते हुए बड़े प्यार से पूछा :

"बहुत चोट आई ? कहां लगी ?"

मिस्टर रबड़वाला ने धीरे-धीरे उठकर बैठते हुए कहा : "कहीं नहीं। मुझे-मुझे माफ कर दो विमी। मैं--मैं—जाता हूं।"

उठने से पहले ही मिसेज अहमद ने उन्हें अपनी बाहों में जकड़ लिया। कहने लगीं: "नहीं, मैं अब तुम्हें न जाने दूंगी। मैंने तुम्हें बड़ी चोट पहुंचाई है।..मगर मेरे दिल की गहराइयों को समझो रबड़वाला ! दिलबर की याद में ऐसी खोई कि मैं भूल गई किससे क्या कह रही हूं।..अहमद तो गए ! मेरा बस न चला। मगर क्या उनके ही जैसे अपने हमदर्द को भी यों ही चला जाने दूंगी ? अब तो तुम्हीं मेरे अहमद हो। माई पुअर अहमद ! माई पुअर अहमद !"

कहते हुए उन्होंने मिस्टर रबड़वाला के होठों पर अपने प्यार की छाप लगा दी—वैसे ही अचानक, जैसे कि मिस्टर अहमद ने चलते वक्त उनके होठों पर अपने प्यार की छाप छोड़ी थी।

———

एक था गांधी

एक था गाँधी, एक थी दुनिया। गाँधी एक रंग का दुनिया रंग-बिरंगी।

दुनिया कहती, देखो मैं कैसी रंग-बिरंगी हूँ। पल में साज-बाज बदल जाते हैं, मेरा रंग रूप बदल जाता है। इससे मैं बड़ी सुन्दर लगती हूँ।

दुनिया को अपनी इस रंगारंग वाली सुन्दरता पर बड़ा घमंड था। वह सबको रिझा लेती थी पर गाँधी न रीझा।

गाँधी ने दुनिया से कहा कि तुम बड़ी रंग-बिरंगी, हमें अच्छी नहीं लगतीं।

इसपर दुनिया जल भुनकर कलाबत्तू हो गयी, और जल्दी जल्दी रंग बदलने लगी।

मगर गाँधी ने उस ओर देखा ही नहीं। वह सूरज को देख रहा था। गाँधी ने देखा, पूरब का सूरज पच्छिम में डूबता है।

गाँधी पच्छिम गया। दुनिया ने वहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा, लगी अपने रंग दिखाने। काले गोरे का भेद नजर आया। गोरा रंग कहे, मैं काले से अच्छा हूँ। काले का दरजा मुझ से नीचा है। मैं काले पर राज करूंगा। तरह तरह के जोर जुल्म और अत्याचार करूंगा।

गोरा कहे, मेरा सुख तो मेरा है ही, पर मैं काले के सुख पर भी अपना हक जमाऊंगा। काले को क्या हक कि सुख भोगे? काला कहे, मैं अपना सुख क्यों न भोगूं? गोरा डपट कर जवाब दे, क्योंकि तुम काले हो।

गाँधी ने न्याय की बात कही। कहा, कि सब रंग एक समान। काया के पिंजरे चाहे जितने रंगों के हों पर मन का पंछी तो सब में

एक ही जैसा है फिर ऊंच-नीच कैसा, छोटा बड़ा कैसा, राजा परजा कैसी ?

गोरा बिगड़ गया। उसने जोम में मारते मारते गांधी की हड्डी-पसली तौड़ दी।

गाँधी बोला, गोरे यह तुम्हारा अन्याय है। मैं तो न्याय की बात कहूँगा ।

गोरा बोला, तुम न्याय की कहोगे तो हम और मारेंगे।

गाँधी से न्याय की बात सुन कर काले को समझ आई। काले ने सोचा, ठीक तो है। गोरा मुझपर क्यों राज करे ? क्यों लूटे ? काला सोचे, मैं गोरे से बेकार डरता था। डर ही डर में कमजोर बन गया। अब न डरूंगा। और जो गोरा अब न्याय की बात को मारकर दबायेगा तो मैं भी मारूँगा।

गाँधी ने कहा, यह बात जंची नहीं। गोरा भी अन्याय करे, और फिर काला भी अन्याय करे? अन्याय से अन्याय खतम कैसे होगा ? गोरे को गोरा रंग मेट नहीं सकता, और न काले को काला। सच्ची बात तो यह है कि गोरे काले भी एक दूसरे को नहीं मेट सकते। हां अन्याय को न्याय से मटियामेट किया जा सकता है। गोरा मेरे ऊपर चाहे जितनी जबरदस्ती दिखा ले, चाहे कोई मेरे ऊपर कितना जोर जुलुम कर ले——मैं डरूंगा नहीं। क्यों डरूं, ज्यादा से ज्यादा मुझे मार ही डालेगा न? सो मरना तो एक दिन सब को ही है। जब मरना है तो डरना क्या ? फिर न्याय की बात में क्यों दबे ?

बात काले की समझमें आ गयी ।

दुनिया अपने रंगों का खिलवाड़ देख रही थी। वह काले को भी शह देने लगी और गोरे को भी। गोरा रंग तो मुहजोर, झट से दुनिया की चंग पर चढ़ गया। पर काला तो डर ही डर में कमजोर हो गया।

दुनिया की बताई चाल पर पग उठाने का हौसला कहां से लाये ? लेकिन न्याय अन्याय समझ जाने पर काला अब गोरे से दब कर भी रहना नहीं चाहता था ।

गाँधी की बात माने बिना रहा भी न जाता था । यों काला न्याय अन्याय के बड़े धरम संकट में पड़ गया । संडीले के लड्डू खाये तो पछताये और न खाये तो पछताये। काले ने सोचा कि खायंगे भी और पछतायेंगे भी—और फिर पछता-पछता कर खायेंगे ।

जो नियत डगमगायी तो चाल की सूझी । काले ने सोचा कि हम अन्याय को न्याय से ही मारेंगे, मगर न्याय को भी हम न्याय की तरह नहीं मानेंगे—उसे नीति कह कर मानेंगे ।

गाँधी बोला, भई तुम्हारी बात तो सवा सोलह आने की नहीं । खैर न्याय को नीति ही कह कर मानो, मगर नीति भी तो ईमानदारी पर ही चलती है । जिस नीति का ईमान नहीं वह बेईमान हुई। और बेईमानी तो अन्याय है । काले को यह बात भी समझ में आ गई । समझ पर समझ आ रही थी। गोरे का डर भाग गया था । काले ने छाती ठोक कर कहा, मेरा ईमान देखना ।

फिर तो काला भी निडर होके खड़ा हो गया । गोरे से बोला, अब हम तुम से नहीं डरते। क्योंकि हम अब मरने से भी नहीं डरते, फिर तुम्हारे अत्याचारों से क्या डरना । तुम चाहे हमें फांसी पर चढ़ा दो, मगर अब हम अपने हक तुम्हें न छीनने देंगे । हम किसी को भी न तो अपने साथ अन्याय करने देंगे और न खुद किसी के साथ अन्याय करेंगे ।

गांधी ने कहा, कि हम तुम्हारे अन्याय को अपने न्याय से मारेंगे और न्याय अन्याय तो समझ का फेर है। जिसके साथ अन्याय किया जाता है उसे न्याय की बात जल्दी समझ में आ जाती है । अन्यायी में

न्याय बिलम्ब से चेतेगा, मगर चेतेगा तो जरूर। सो अपने हक के लिए हम गोरे से लड़ेंगे तो जरूर, मगर गोरे को अपना दुश्मन नहीं मानेंगे। उसकी दुश्मन तो खुद उसकी समझ ही है जिसके कारण वह न्याय अन्याय के भेद को नहीं देख पाता। कोई और उसका हक छीने तो उसकी समझ में आये।

इसके बाद गाँधी बोला, पर इससे रोग अच्छा कैसे हो सकता है? किसी का भी हो जब तक छीने जाने का चलन रहेगा, तब तक किसी को भी चैन नहीं मिल सकता।

गाँधी की बात लेकर काला गोरे से लड़ने लगा। गोरे ने काले की बड़ी मारकाट मचायी। काला बोला कि अजी हम तुम्हारी इस मारकाट से डरेंगे ही नहीं। फ़िर तुम हमारा क्या बिगाड़ लोगे? मगर हम अपना हक तुम्हें न छीनने देगें। हमारे ऊपर हमारा ही राज होगा। हम अब किसी के गुलाम नहीं रहेंगे।

दुनिया के वहुत से रंग खुलने लगे। सभी न्याय अन्याय की बात समझने लगे। सब की समझ ने न्याय की बड़ी बड़ी पैनी बातें सोच निकालीं। सोचा कि बात काले गोरे तक ही नहीं रुक जाती--पीला रंग सब से बड़ा है। चाहे गोरा हो या काला, मोने की बसंती चमक में सब की आखें चोंधिया जाती हैं।

सब के ऊपर राज करता है सोना, सिक्का--पैसा सोने की छत्र छाया में गोरी चिट्टी चांदी का रुपया काले बाजार से सांठगांठ करता है। सोने की छत्रछाया में एक घी का कौर खाता है दूसरा जूते और लाठियां। सोने की छत्रछाया में ही दुनिया अपने रंग बदलती है--काले को गोरा, गोरे को काला, सच को झूठ और झूठ को सच, पाप को पुन्न और पुन्न को पाप कहकर दुनिया अपनी मनमानी कर लेती है।

यों अपनी पोल खुलती देख कर दुनिया घबरायी, मारे गुस्से के बौखला उठी । दो-दो बार उसने बड़े धूम धड़ाके से अपने गुस्से की आग भड़काई । मगर उसके सारे रंग ढंग बिगड़ते ही चले गये। अपनी यह दुर्गति देख कर दुनिया बेबसी और तेहे के मारे एक दम से लाल पीली हो गयी ।

लाल रंग बोला, चाहे सब रंग मिट जायं पर हम न मिटेंगे, हमारा रंग तो प्रेम का रंग है । लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल, पर हम न्याय से अन्याय को मिटाने की तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं करते। जब अन्याय न्याय के आगे अपना सिर झुकाने से इन्कार करे, हठधर्मी दिखाये तब हम भी अपनी हठधर्मी से उसको हलाल करेंगे। लोहे को लोहा काटता है और हीरे को हीरा। एक बार अन्याय को अन्याय से खतम कर लें । नफरत को नफरत से मिटा दें, तब प्रेम ही प्रेम बच जायगा ।

गांधी बोला यहां भी समझ का फेर है। हम प्रेम पर भरोसा रख कर हौसले से आगे बढ़ते हैं। तुम प्रेम पाने के लिये नफरत पर भरोसा रख कर आगे बढ़ते हो। हमारा हौसला तो सदा प्रेम भरा है—थकना जानता ही नहीं । तुम्हारा हौसला थक थक कर जागता है। सच्ची बात क्या है ? वह हौसला जो बिना चिढे, बिना रुके आगे बढ़ता जाये, या कि जो चिढ़ता और चिढ़ाता हुआ आगे बढ़े ।

पीला अपनी चालें चलने लगा ।

वह बोला कि वाह प्रेम और बसंत का तो संजोग है, हम पीले तो जग पीला। हम प्रेम ही प्रेम करेंगे। हम अपने से प्रेम करेंगे । जब अपने से ही प्रेम न सधा तो दुनिया से क्या सधेगा ? इसलिए सिर्फ हम अपने से ही प्रेम करेंगे ।

गाँधी बोला, जो एक से ही प्रेम का पाठ पढ़ना है तो सूरज से प्रेम करो, जिसमें सब रंग समाये हैं ।

पीले ने आंख उठा कर आसमान की तरफ देखा। सूरज जब उससे न सहा गया तो झट से आंखें नीची कर लीं और कहा कि भई सूरज भी पीला ही पीला है। और वह झांझ करताल लेकर अपनी धुन को गांधीके सुर में सुर मिलाने लगा।

गाँधी गावें,

'रघुपति राघव राजा राम।'

और पीले को अपनी झाँझ करताल की धुन में यही यों सुनाई दे कि—

पीले पीले राजा राम
पतीत पावन पीले राम
ईश्वर अल्ला पीले नाम
सबको सन्मति दे भगवान

रंग को रंग खाने लगा।

गाँधी कहे, यह न्याय नहीं। कोई किसी को दबा नहीं सकता, कोई किसी को अपना गुलाम नहीं बना सकता। न्याय भी जब अन्याय से अन्याय को दबायेगा तब बनी बात बिगड़ जायगी। अन्याय से अन्याय मरता नहीं बल्कि दूना बढ़ जाता है। और इस तरह न्याय मारा जाता।

गाँधी कहता रहा, पर किसी ने उसकी इस बात पर कान न दिये। जिस न्याय के बल पर कमजोर शहजोर बना, काले के ऊपर से गोरे का राज हटा, उसी न्याय को अब बेकार पुराना और कमजोर माना जाने लगा।

दुनिया अपनी चाल चल गयी। गाँधी को तो न रिझा पायी पर काले को रिझा लिया। काला रंग भी अब दुनिया-देखी बरतने लगा। उसने गाँधी से कहा, तुमने हम को राह दिखायी इसलिए ठाकुरजी की तरह तुम्हारी पूजा करेंगे। और तुम भी अब ठाकुरजी की तरह पत्थर के

बन कर चुपचाप मन्दिर में बैठ जाओ। पत्थर के ठाकुर भला कहीं बोला करते हैं ? वह तो सोने चांदी के मुकुट पहन कर, हीरे जवाहरात के गहनों से सजकर रेशमी पीताम्बर धारण करके सबकी प्रार्थना सुना करते हैं। चोर उनसे अपने लिए वरदान माँगता है, शाह अपने लिए। तुम भी यों ही सब को वरदान दिया करो। यही न्याय की बात है।

गाँधी बोला, मैं ऐसा न्याय नहीं मानता। मैं पत्थर का ठाकुर नहीं बनूंगा।

दुनिया ने देखा कि गाँधी यूं नहीं रिझेगा तब उसने अपनी चाल बतायी। अधरम की कालिख अपने मुंह पर धरम का पाउडर मल कर गाँधी को गोली मार गयी।

पूरब का सूरज इस बार पूरब में ही डूब गया।

गाँधी मर गया तो गाँधी के मन्दिर बनने लगे। दुनिया उसे पत्थर का ठाकुर बना कर न्याय की सच्ची आवाज बन्द करने लगी और अपने अन्याय को न्याय कह कर खोटा सिक्का चलाने लगी।

लेकिन न्याय की बानी भी कहीं दबती है ? सत्य के बोल तो हवा में गूंजते हैं, सांसों में भरे हैं।

गाँधी मर कर भी बोलता है। पत्थर का ठाकुर बन कर भी वह चुप नहीं रहा। उसने दुनिया से कहा कि तुम्हारे रंग बिरंगेपन पर मैं नहीं रीझूंगा। तुम्हारी यह रंग बिरंगी छटा धोखा है; झूठ है, अन्याय है। तुम मुझे तो पत्थर बना सकती हो पर मेरे न्याय और सत्य को पत्थर नहीं बना सकती। वह तो मेरी पत्थर की मूरत में से भी बोलेगा।

न्याय को अन्याय से तो कभी जीता ही नहीं जा सकता। न्याय को भी जीतने वाला एक है—प्रेम। उसके आगे दुनिया के सब रंग फीके पड़ जाते हैं। प्रेम का रंग ही पक्का है, बाकी सब रंग कच्चे।

राम करे जैसे गांधी जिया वैसे सब जिएँ।

आदमी, नहीं ! नहीं !!

महर्षि सुक़रात के सवालों से लोग परेशान हो उठे थे। उन्हें इसके लिये ज़हर पीना पड़ा। इससे वह खुद परेशान हो गये। जीवन द्रष्टा महर्षि को सवाल पूछने की आदत साँस लेने की तरह पड़ी हुई थी।

रूह जब अकेली हुई, कोई न मिला, तो अपने आपको ही सवालों से तंग करने लगी।

जुग बीत गये। महर्षि सुक़रात की आत्मा सवालिया निशान को ही ब्रह्म मान कर उसी में लीन हो गई। इस तरह जब महर्षि ब्रह्मरूप हो गये तो उन्हें एक दिन ब्रह्माण्ड का ध्यान आया। ब्रह्म-रूप हो गये थे तो क्या हुआ, आख़िर थे तो सुक़रात ही। गुजरा ज़माना सोचते-सोचते उनका सवालिया मन अपने जवाबी मन से पूछ बैठा, "क्यों जी, हमारे ज़माने का कुछ नामोनिशान अभी भी होगा धरती पर ?"

मगर 'जवाबी' तो अब ब्रह्म हो गया था। ब्रह्म न बोला।

सुक़रात फिर भी न माने। दुनिया देखने चल पड़े। अपनी जन्मभूमि यूनान का ध्यान आया। मगर ज़हर के डर से वहाँ जाने की हिम्मत न हुई। सभ्यता के केन्द्रों में उन्हें केवल अपने जमाने के मिस्र, चीन और हिन्दुस्तान के ही नाम विदित थे। महर्षि ने हिन्दुस्तान आना पसन्द किया। ज्ञान से तेजोमयी ऋषि-महर्षियों की पवित्र भूमि, मानवता का महान् पोषक यह देश सनातन काल से सभ्यता का विश्व-वंद्य केन्द्र है—यह सोच कर महर्षि हिन्दुस्तान पधारे।

हम दहक़ानी !

जीवन-दर्शी महर्षि जीवन देखने लगे। देखा, खेत-खलिहानों से

आग की लपटें उठ रही हैं । शोर मच रहा है, "और जलाओ । और जलाओ !"

सुक़रात चिल्लाये, "कल भूखे मरोगे । अकाल होगा ।"

जवाब मिला, "परवाह नहीं । हम बदला लेंगे । खेत जलाओ ! खेत जलाओ ।"

महर्षि ने पूछा, "किससे बदला लोगे ?

भीड़ चिल्लाई, "हम हिन्दू हैं । हम सिख हैं । हम मुसलमान हैं । हम एक दूसरे से बदला लेंगे । बढ़ो, बढ़ो, खेत जलाओ, खेत जलाओ !" भीड़ खेत जलाने के लिये फिर दौड़ पड़ी ।

महर्षि दौड़ कर आगे आये । समझाया, "खेत न तो हिन्दू हैं, न सिख, न मुसलमान । पेट न हिन्दू है, न सिख, न मुसलमान । पेट सब का है; अन्न सब का है । आदमी का है ।"

"नहीं, नहीं । हमें आदमीयत की तरफ़ मत ले जाओ । इन्सानियत के सिद्धान्त हमें कायर बनाते हैं; गुलाम बनाते हैं । हम आज़ाद हैं । हम बहुत सह कर, बहुत लड़ कर आजाद हुए हैं । हमें आदमीयत मत सिखाओ । आदमीयत मुर्दाबाद ! आज़ादी ज़िन्दाबाद ।"

सुक़रात ने कहा, "मगर भाई मेरे, इन आपसी दंगों से आज़ादी चली जायगी ।"

भीड़ गुस्से से चिल्लाई, "इन्हें दंगे मत कहो । यह धर्मयुद्ध है । यह जिहाद है । आज़ादी जाती है तो भाड़ में जाये । हम सच्ची आज़ादी हासिल करेंगे । हम रामराज बनायेंगे । इस्लाम राज बनायेंगे । बोलो, जय हिन्द ! सत् सिरी अकाल ! अल्लाहो अकबर ! खेत जलाओ ! खेत जलाओ !"

भीड़ बढ़ी । सुक़रात चिल्लाये, "मगर खेत क्यों जलाते हो ? खेत तुम्हारे हैं—राम-राज के हैं, इस्लाम राज के हैं ।"

"नहीं, नहीं । खेत दुश्मन के हैं । खेत जलाओ, खेत जलाओ । हमें अक्ल मत सिखाओ । अक्ल हमें आदमी बना देगी । हम हिन्दू हैं । हम सिख हैं । हम मुसलमान हैं । हम आदमी नहीं ! नहीं !! नहीं !!!

× × ×

हम शरीफ़ !

एक शहरी बाबू से महर्षि ने इण्टरव्यू ली । बाबू बोले, "हम पढ़े लिखे हैं । नये ज़माने के, नये विचारों के हैं । हम सभ्य हैं, इज्ज़तदार हैं—बड़े आबरूदार हैं ।

"हमारे घर रोज सुबह अख़बार आता है । सुबह आँखें खोलते ही हम अख़बार पढ़ते हैं । आँखें खोल कर हम खबरें पढ़ते हैं ।

"ख़बरें आग उगलती हैं । हम चिढ़ उठते हैं । हमें गुस्सा आता है । हमें जोश आ जाता है ।

"हम बीसवीं सदी के सभ्य हैं । अख़बार बारहवीं सदी की बर्बरता और जंगलीपन की ख़बरों से भरे रहते हैं । लाज़िम है कि इससे हमारी सभ्यता को बुरा लगे । हम चिढ़ उठें । हमें गुस्सा आये । हमें जोश आ जाये ।"

"हमारी माँ-बहनें, हमारे बच्चे, हमारे भाई, हमारे आदमी .... हाय ! उन पर कैसी-कैसी विपता पड़ रही है ? कैसे ज़ुल्म ढाये जा रहे हैं । अमानुषिक ! राक्षसी ! ओह......

"इन ज़ालिमों की—इन म्लेच्छों की—इन काफ़िरों की बोटी बोटी काट डालनी चाहिये । इन्हें कुत्ते-बिल्ली की मौत मारना चाहिये । इन्हें कुचल-कुचल, जला-जला कर, सता-सता कर मारना चाहिये । तभी बदला पूरा होगा । इनकी औरतों की तो और भी बदतर हालत करनी चाहिये, जैसी इन्होंने हमारी माँ-बहिनों की की है । तभी बदला पूरा

होगा । इनके ताज़ा पैदा हुए बच्चे तक को उछाल-उछाल कर मारना चाहिये । तभी बदला पूरा होगा ।····मैं अपने धर्म के वीर पहलवानों और जोशीले नौजवानों को अभी जाकर लताड़ बताता हूँ । मैं उन्हें बतलाऊँगा कि तुम्हारे धर्म और मज़हब पर, तुम्हारे भाइयों पर, तुम्हारे बच्चों और तुम्हारी माँ बहिनों पर कैसे-कैसे ज़ुल्म और अत्याचार किये जा रहे हैं । तुम कायर हो । नामर्द हो । चूड़ियाँ पहन लो । वरना दुश्मन से बदला लो । उठो, बोलो, जय हिन्द ! सत् सिरी अकाल ! अल्लाहो अकबर !"

बाबू इतने जोश में आ गये कि इण्टरव्यू का ख़याल न रहा। तेज़ी इस क़दर आई कि एक दम कमरे से बाहर हो गये ।

सुक़रात ने लपक कर बाँह पकड़ी और कहा, "मगर बाबू, पहले मेरी इण्टरव्यू तो पूरी हो जाने दो ।"

बाबू झल्लाये, कहने लगे, "पूरी कीजिये न साहब । मुझे दफ्तर को देर हो रही है । आजकल दंगे के दिन हैं, देखभाल कर चलना पड़ता है । सवा नौ बज चुके हैं ।"

साहब की सदा-सुहागिन का दिमाग़ रखने वाले बाबू की घबराहट देखकर महर्षि मुस्कुराये । उन्होंने कहा, "आदत और सत्य के अनुसार तो मुझे बहुत से सवाल पूछने थे । लेकिन आप चूंकि जल्दी में हैं इसलिये एक ही सवाल पूछूंगा—आप कौन हैं ?"

"कौन, मैं ? मैं बाबू जटाशंकर—सर्दार ऊधमसिंह—क़ाजी अब्दुर्रहमान बी० ए० (ऑनर्स) एम० ए०; हैड क्लर्क····"

सुक़रात ने टोक कर कहा, "मैं आपका डाक का पता नहीं पूछ रहा महाशय, श्रीमन् या जनाबवर । मैं पूछता हूँ कि आप, याने कि बाबू जटाशंकर उर्फ़ सर्दार ऊधमसिंह उर्फ़ काज़ी अब्दुर्रहमान उर्फ़ बी० ए० (ऑनर्स) उर्फ़ एम० ए०—उर्फ़—"

बाबू हड़बड़ा कर बोले, 'अजी, यह उर्फ़ नहीं, यह डिगरियाँ हैं जो मैंने यूनिवर्सिटी के इम्तहान पास करके पाई हैं।"

सुक़रात बोले, "क्षमा कीजियेगा, ग़लती हुई। तब तो यह बहुत क़ीमती हैं। इनकी बदौलत ही तो आप अपनी अक्ल को तसवीर बना कर खूंटी पर टाँग देते हैं। हाय! मेरे पास न हुई डिगरी। वरना क्यों मुझे अक्ल का बोझ इस तरह उठाये-उठाये घूमना पड़ता? ख़ैर, डिगरी नहीं तो सवाल हाज़िर है। मेरा मतलब यह है जनाबवर, कि आप सर्दार जटाशंकर, क़ाज़ी ऊधमसिंह या बाबू अब्दुर्रहमान जो भी हों, सुनिये। यहीं खड़े रहिये। डिगरियाँ खूंटी पर और बाबूगिरी दफ्तर की दराज़ में रखकर, सब उर्फ़ झाड़ पोंछ कर झटपट यह बतलाइये कि आप कौन हैं?"

महर्षि सुक़रात ने अपनी दाढ़ी हिलाकर, बड़ी-बड़ी आँखें निकाल दीं। बाबू ठहरे अपनी माई के पूत। सुक़रात की दाढ़ी में गुस्सा देखकर दुबक गये। घबराकर कहने लगे, "जी, जी मैं हिन्दू हूँ। मैं सिख हूँ। मैं मुसल—"

सुक़रात ने डाटा, "फिर आप उर्फ़ जोड़ रहे हैं।"

बाबू बेचारे बड़ी उलझन में पड़ गये। उनकी समझ ही में न आता था कि यह बुड्ढा दाढ़ीवाला आखिर पूछ क्या रहा है? बोले, "बाबाजी, यह हिन्दू, सिख, मुसलमान उर्फ़ नहीं, हमारी जाति है, हमारा धर्म-मज़हब है।"

"किसकी जाति? किसका धर्म-मज़हब?"

"अरे साहब, मेरी जाति। मेरा धर्म-मजहब—और किसका?" बाबू अब झल्लाने लगे थे। आखिर कब तक बुड्ढे से खौफ़ खाते रहें। अब तो वह साहब से भी इतना नहीं डरते। क्लर्कों की हड़ताल में हिस्सा ले चुके हैं।

मगर सुक़रात भी तेलिहा डण्डे की तरह् सिर्फ़ चोट करना ही जानते थे, बोले, "यही तो मैं पूछ रहा हूँ जनाबवर, कि नाम आपका है, डिगरियाँ आपकी हैं, पेशा है, जाति है, धर्म-मजहब हैं—सब कुछ आपका है। मगर खुद आप कौन हैं ?"

बाबू को गुस्सा आने लगा था। झल्लाकर बोले, "अजी मैं आदमी हूँ, और कौन ?"

महर्षि बड़ी ज़ोर से ठहाका मार कर हँस पड़े। बाबू बेचारे हक्के-बक्के होकर उनकी तरफ़ देखने लगे।

सुक़रात ने कहा, "ग़नीमत है कि अपने तमाम उर्फ़ों के बावजूद **तुम अभी यह नहीं भूले कि तुम आदमी हो**। भटके हो मगर भूले नहीं। मगर भाई मेरे, कब तक भटकते रहोगे ? तुम आदमी हो। हिन्दू, सिख, मुसलमान या कोई भी धर्म देश और नाम से तुम बदल नहीं जाते। औरतें और बच्चे भी तुम्हारे ही हैं। फिर किसे मारोगे ? किससे बदला लोगे ?. खुद अपने से ही ?"

बाबू बोले, "अपने से क्यों ? हम हिन्दू से बदला लेंगे, सिख से बदला लेंगे, मुसलमान से बदला लेंगे।"

"यानी अपने उर्फ़ों से बदला लोगे ?" सुक़रात ने कहा, "ठीक है। मगर जिस तरह तुम बदला ले रहे हो वह तरीक़ा ग़लत है।"

बाबू यकायक गर्म हो पड़े। तैश में आकर कहने लगे, "आप हमें गाँधी का रास्ता बताना चाहते हैं ? मैं कहता हूँ गाँधी शैतान है। वह महात्मा नहीं, ढोंगी है।"

दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए महर्षि ने विश्वास भरे स्वर में कहा, "अजी, अव्वल नम्बर का। शैतान है इसीलिये तो प्रेम-प्रेम, अहिंसा-अहिंसा चिल्लाता है। गाँधी अगर महात्मा होता तो आपके मन्दिरों,

मस्जिदों और गुरुद्वारों पर चढ़कर वह 'नफ़रत-नफ़रत' चिल्लाता। खैर गाँधी की बात छोड़िये। मैं तो आप लोगों को नफ़रत का पैग़ाम सुनाने आया हूँ। नफ़रत करो—बस—नफ़रत करो। अपने से नफ़रत करो; बीवी से, अपने बच्चों से, माँ-बाप, भाई-बहनों से, अपने दोस्त-अहबाब से—सारी दुनिया से नफ़रत करो। सबको मार डालो। जाओ मेरे शेर! फ़ख्रे-हिन्द, फ़ख्रे-पाकिस्तान, फ़ख्रे-ईमान, दौलते-क़ौम! जाओ। सबसे पहले अपनी माँ, बहन, पत्नी, बहू और बेटियों की लाज लूटो! बुरी तरह, बहुत बुरी तरह से पेश आना। समझे? जैसे दुश्मन की माँ, बहन, पत्नी, बहू और बेटियों की लाज लूटोगे। और फिर उन्हें सता-सताकर मार डालना······।"

बाबू के चेहरे पर दर्द की बेकली, छटपटाहट और पागलपन बरसने लगा। वह कुछ कहने को ही थे कि सुक़रात ने टोक कर कहा, "नहीं, नहीं, सुने जाओ। सुने जाओ मेरे शेर! फ़ख्रे-इस्लाम! धर्म-वीर! वाह गुरु के लाड़ले! जाओ। और अपने बच्चों की टाँगें चीर डालो। उनकी चिन्दी-चिन्दी उड़ा डालो। वह अगर अब्बा या पिता-पिता चिल्लायें तो रहम न खाना। हरगिज़ नहीं! क्योंकि रहम और प्यार, यह दो नफ़रत के सब से बड़े दुश्मन हैं। इनके क़ाबू में न आना। वरना बदला पूरा न होगा। जाओ। मारो। मारो। दुनिया में एक भी हिन्दू, सिख और मुसलमान न बचने पाये—एक भी नहीं। तुम भी नहीं। कोई नहीं···और तब, यह बूढ़ा सुक़रात हिमालय की चोटी पर खड़ा-खड़ा देखेगा—रत्नगर्भा भारत-भू पर लाशें, लाशें, लाशें! फिर पहचानेगा, यह हिन्दू की लाश है, यह सिख की, यह मुसलामन की। अनगिनत आदमियों की लाशें हैं।—मगर नहीं। आदमी अमर है। हिन्दू मर सकता है, सिख मर सकता है, मुसलमान मर सकता है, यहूदी, पारसी, ईसाई, जैन, बौद्ध मर सकते हैं; हिन्दुस्तानी, पाकिस्तानी, चीनी, जापानी, ईरानी, रूसी, अमरीकी, फ्रांसीसी, जर्मन,

यूनानी, अंग्रेज़—हर क़ौम मर सकती है, हर मज़हब मर सकता है। मगर आदमी नहीं! नहीं!! नहीं!!!

× × ×

हम धर्ममूर्ति!

आदमी के अमरत्व में दृढ़ विश्वास लेकर ज़हर पीनेवाला यूनानी महर्षि आगे बढ़ा। सोने-जवाहरात, अनाज, कपड़ा और बिसातखाने की बड़ी-बड़ी व्यापारी कोठियों के चौक में जाकर खड़ा हो गया।

ऊँची-ऊँची हवेलियाँ; उनसे भी ऊँचे लक्ष्मीनारायण के मन्दिर, जुमा-मस्जिद और सोने से मढ़े हुए गुरुद्वारे वहाँ दिखाई देते थे। शंख-घड़ियाल की ध्वनि थी, अज़ान की आवाज़ें थीं; मोटर, ट्राम, बस, हवाई जहाज़, हर क़िस्म की सवारियों की खड़खड़ाहट थी; टेलीफ़ोन, टेलीग्राम, टेलीविज़न, रेडियो,—सब क़िस्म का शोर था। और आदमी का शोर उस ठोस घड़घड़ाहट में धुआँ धुआँ-सा गूंज रहा था। आदमी का ख़याल आते ही महर्षि ने सोचा, पहले देख लें, परख लें।

महर्षि देखने-परखने लगे। बड़े-बड़े त्रिपुण्ड देखे, रामफटाका देखे, राम-नामी राधेश्यामी देखी, माला देखी, तस्बीह देखी; ख़ुदा का नूर देखा; कंघी, कच्छ, कर्द, केश और कृपाण देखे। बड़ी-बड़ी तोंदें देखीं; ख़ुश्क नज़रें देखीं; हरेक के होठों पर ख़ास मिल की बनी हुई मलमली मुस्कान देखी, जिसमें दिल के सात पर्दे झलक जाते थे। वहाँ महर्षि ने चारों वेदों की महिमा सुनी, जिन्हें वहाँ वालों ने कभी भी पढ़ा या देखा नहीं था। महर्षि ने वहाँ रामायण, महाभारत की चर्चा सुनी, पुराण देखे, अर्थ-शास्त्र अनर्थ-शास्त्र देखे, कामशास्त्र कोकशास्त्र देखे; कुरआन, हदीस देखी; ग्रन्थ साहब बाँचा जाता देखा। बड़ा चमत्कार देखा।

सत्यनारायण का प्रसाद खाया, मालूद-शरीफ़ के मिश्री बताशे खाये, सत्संग का कड़ा-परशाद खाया। खाने की वहाँ कमी नहीं थी, बल्कि

इतना था कि वहाँ के रहनेवालों के सात पुरखे, और आगे आने वाली सात पीढ़ियाँ भी मिलकर खायें तो पचा न सकें। लिहाज़ा धर्म और खुदा को धोखा देने के लिये, सदावर्त और खैरात के नाम पर कुछ जूठे टुकड़े ग़रीबों और फ़क़ीरों को भी बाँट दिये जाते थे।

महर्षि देखते रहे। धर्म-मूर्त्ति सेठ ने अपने धर्मवालों को धन से, भोजन से, धर्म के ज्ञान से, जीपकारों से, मशीनगनों और गोला-बारुद से समृद्ध किया। इसी तरह मज़हबपरस्त ने अपने मज़हब-वालों को।

दोनों ने बहुत कुछ कहा। जो कुछ कहा उसका मतलब एक ही था, सिर्फ़ भाषा का जादू रंग बदल देता था।

"यह काँग्रेस, गाँधी, जवाहर, सब दुष्ट हैं। इनका दीन धरम कोई नहीं। यह राजाओं-महाराजाओं को, सेठ-साहूकारों को तबाह कर देना चाहते हैं। ये किसान-मजदूर राज क़ायम करना चाहते हैं। सोचिये, अगर राजा-महाराजा उठ गये, सेठ-साहूकार न रहे तो धर्म की रक्षा कौन करेगा? हमारे ठाकुरजी के मन्दिरों में छप्पन पकवानों का भोग कौन लगायेगा? इतनी विद्या, ज्ञान, इतना बड़ा कारोबार, धन-दौलत—यह सब कैसे बचेगा? राजा को न मानना ईश्वर को न मानने के समान है। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि होता है। इसे तो सभी धरम-मजहब-वाले मानते हैं। हमारे भगवान रामचन्द्र स्वयं राजा थे, खलीफ़ा सुल्तान राजा थे, गुरू गोविन्दसिंह राजा थे, रंजीतसिंह राजा थे। सोचने की बात है, कि अगर राजा न रहे तो परजा कहाँ से रहेगी। ज़मींदार भी राजा के समान ही हैं। अगर ये राजे-रजवाड़े, ज़मींदार न रहेंगे तो बेचारी रंडियाँ कहाँ जायेंगी? इन दुखियारियों को, जो पेट की खातिर अपना धरम बेचती हैं, इन्हें खाना, गहने और सड़ियाँ फिर कौन देगा? क्या यह भूखे किसान मजदूर? इन बेचारे शराबवालों की दूकानें बन्द हो जायेंगी, उनके बाल बच्चे भूखों मर जायेंगे। बेचारे मुसाहब लोग तो

४

दूसरा कोई काम कर ही नहीं सकते। हाय, उनकी कैसी दुर्दशा होगी? फिर हम साहूकार लोग उधार किसको देंगे? ब्याज कैसे वसूल करेंगे? और अगर हम सेठ-साहूकार रुपया न कमा सके तो कारोबार रोजगार कहाँ रहेगा? दुनिया उजड़ जायेगी। इसलिये काँग्रेस का यह किसान-मजदूर राज हमारे सनातन धर्म के विरुद्ध है। इसको जड़ से उखाड़ फेंको। काँग्रेस हिन्दुओं और सिखों की शत्रु है। गाँधी हिन्दुओं का दुश्मन है। काँग्रेस मुसलमानों को खुश करना चाहती है। उसने सिखों का पंजाब भी पाकिस्तान को सौंप दिया। हमारे हिन्दू और सिख भाइयों की पंजाब और बंगाल में कैसी दुर्दशा हुई है? हरे-हरे! शरणार्थियों के कष्टों की हृदय-विदारक घटनायें सुन-सुनकर हमारा तो हृदय फटा जाता है। यदि काँग्रेस का राज रहा तो हिन्दू-सिख धर्म का लोप हो जायगा। काँग्रेस को उलट दो। मुसलमानों का नाश करो। फिर से परम-पावन रामराज्य स्थापित करो। उठो, क्षत्रिय वीरो, भीम-अर्जुन की सन्तानों। उठो, म्लेच्छों का मान मर्दन करो। राक्षसों का संहार करो! हमारे मन्दिर शंखनाद कर तुम्हें जगा रहे हैं। हमारा श्रेष्ठ सनातन धर्म तुम्हें कर्तव्य का ज्ञान करा रहा है। हमारी प्यारी गो-माता निठुर कसाई की छुरी के नीचे दबी हुई चिल्ला रही है, हा हिन्दू! हा पुत्र! तुम कहाँ हो? मेरी रक्षा करो, मेरे दूध की लाज रखो। हमारी प्यारी भारत माता बिलख-बिलख कर तुम्हें पुकार रही है कि हाय मेरे कपूतों ने मेरे हृदय को चीर कर उसके दो टुकड़े कर दिये हैं, इन्हें कौन फिर से जोड़ेगा? तुम! भारत माता के सपूतो! भीम, अर्जुन की सन्तानों! उठो! बोलो, श्री सनातन धर्म की जय, भारत माता की जय, जय हिन्द...... ।"

"....और इस काँग्रेस को खत्म करो। इस हिन्दू राज को तबाह करो। इन काफ़िरों को जहन्नुम रवाना कर दो। इस मुल्क को हमने तलवार के जोर से जीता है; तलवार के जोर से हमने इस मुल्क पर

सदियों राज किया है। इन काफ़िरों को हमने पैर की जूती बनाकर कुचला है और अब, हमारी आलीशान इमारतें इनके क़ब्जे में हैं। हमें पाकिस्तान मिल गया तो क्या? हमें अपनी जुमामस्जिद चाहिये, लाल क़िला चाहिये, हमारा प्यारा ताजमहल हमें वापस चाहिये। हमारे साढ़े चार करोड़ भाइयों को अभी भी इन काफ़िरों की गुलामी में दिन बिताने पड़ रहे हैं। उन पर क्या-क्या जुल्म ढाये जा रहे हैं, इसको तो उन मज़लूमों का दिल ही जानता होगा, या फिर खुदा जानता है। पाक परवरदिगार का साया हमारे सर पर है। मुस्लिम मिल्लत खतरे में है। हमारा बरसों का सपना, हमारी शान्दार तवारीखी जीत का नमूना, हमारा प्यारा पाकिस्तान आज खतरे में है। काफ़िर दुश्मन उसे नेस्त-नाबूद करना चाहते हैं। अल्लाह के प्यारों को खाक में मिला देना चाहते हैं। इसीलिये ऐ बिरादराने-इस्लाम! जाग उठो! होशियार हो जाओ। फिर से चंगेज़ की तलवार हाथ में लो, और काफ़िरिस्तान को पाकि-स्तान बनाओ। बढ़ो, चलो दिल्ली! फिर से तख्ते-ताउस को तख्ते-इस्लाम बनाओ! हिमाला की चोटियों पर पाकिस्तान का शान्दार पाक-परचम लहराओ। जाओ, शेरे इस्लाम, जाओ। काफ़िरिस्तान पर शानदार फ़तह हासिल करो। सुर्खरू होकर लौटो। जीते, तो काफ़िरों की औरतें और उनकी बेशुमार दौलत तुम्हारे कदमों में होंगी। और, अगर लड़ते लड़ते मौत पाई, तो बहिस्त के दरवाजे तुम्हारे लिये खुले होंगे। जन्नत की हूरें तुम्हारी क़दम-बोसी के लिये हर दम बेक़रार रहेंगी।

"हम से पैसा लो, खाना-कपड़ा लो, तोप-बन्दूकें, तलवारें लो। जाओ, और हमारे लिये हिन्दुस्तान की तमाम मिलें, हिन्दुओं का तमाम कारोबार ले आओ। काफिर किसानों को हमारा गुलाम बना दो!"

महर्षि ने धर्ममूर्त्ति सेठ पिल्लूमल और हाजी सेठ कद्दूबख्श को धर्म के नेताओं के रूप में देखा। उन्हें मुक्तहस्त से रुपया पैसा गोला-बारूद बाँटते देखा। उनके क्रोध और आवेश को भी देखा।

जब धर्म-वीरों और इस्लाम के शेरों की भीड़ जोश खाकर अपना अपना फ़र्ज अदा करने चली गई, तो दोनों सेठ उठकर अपनी-अपनी हवेलियों में आये। दोनों ने एक दूसरे को टेलीफ़ोन किया। सेठ पिल्लूमल रजवाड़ों की सहायता से हथियार मँगा रहे हैं। हिन्दुओं में बाँटते हैं, और हाजी सेठ कद्दूबख्श की मार्फत मुसलमानों में भी बेचते हैं। दोनों सेठ मिलकर नफ़ा खाते हैं। हाजी सेठ बहुत-सी हिन्दू कम्पनियों और हिन्दू-अखबारों के बड़े डायरेक्टरों में से हैं। धर्ममूर्त्ति सेठ पिल्लूमलजी ने मुसलमान व्यवसायियों के साथ करोड़ों का ब्लैक मार्केट किया है; इसलिये धर्ममूर्त्ति अंजुमने इस्लाम को नक़द रुपयों से मदद दिया करते हैं। दोनों ही सेठों ने स्वार्थ को व्यावहारिक धर्म मानकर उसे सनातन धर्म और इस्लाम से बड़ा माना है।

महर्षि के सवाली मन को अजीर्ण हो रहा था; मगर चुप थे। जानते थे, यहाँ ज्ञान और सत्य की दाल नहीं गलेगी। 'यह मुझे ज़हर पिलाने वालों की क़ौम के हैं। धर्म और मजहब की खाल ओढ़ने वाले ये पापात्मा हैं। स्वार्थी हैं। ये न हिन्दू हैं, न सिख, न मुसलमान। आदमी तो यह हैं ही नहीं। यह पूँजीशाह है। इनका धर्म है स्वार्थ, इनका कर्म है पाप, इनका न्याय है धोखा, और इनका उद्देश्य है पृथ्वी पर व्यक्तिगत सत्ता की पताका उड़ाना। यह जल्लाद अपनी छुरी से आप ही मरेंगे। वह दिन पास आ गया है—बहुत पास।'

यहाँ से महर्षि अन्याय के अन्त के प्रति अपने को फिर से आश्वस्त कर के आगे बढ़े।

हम अक्ल-!—मन्द

यूनिवर्सिटी आई। महर्षि उल्लसित हुए। लगा, अपने क्षेत्र में आ गये। ब्रह्म हो जाने पर भी पृथ्वी पर आते ही महर्षि मनुष्य-भाव में आ गये थे। उन्हें बहुत देर तक अज्ञान के क्षेत्र में अमानुषिक

कृत्यों का अनुभव करना पड़ा था। स्वभावतः ज्ञान के मन्दिर को दूर से देखते ही महर्षि का मन हरा हो गया था।

पास गये। ज्ञानभूमि भारत के एक ज्ञान-मन्दिर के सामने श्रद्धा से नत-मस्तक होकर यूनानी महर्षि ने विद्या और सत्य की सार्व-भौमिकता को प्रतिष्ठित किया।

धीरे-धीरे मस्तक उठाया। साइकिलों के पहिये बहुत घूमते देखे। चप्पलें आम-चलन, पेशावरी फैशन में देखीं। उम्दा चमचमाते बूट और नागरा वग़ैरह भी अक्सर दिखाई दे जाते थे। ढीली मुहरी के पजामे, सकड़ी मुहरी की पतलूनें; धोतियाँ और चूड़ीदार पाजामे भी अक्सर देखने में आते थे। कुर्ते, क़मीज़ें, शेरवानियाँ, जवाहर-जैकेट, काफ़ी तादाद में कोट भी, कम नेकटाइयाँ—उनमें भी 'टिप-टॉप' बहुत कम। सर नंगे, आम तौर पर रूखे बाल। मगर चिकनाई वाले भी माइनॉरिटी के ख़तरे में न थे। अदा सब की एक-सी; फर्क क़िस्मों का था—किसी की इण्टेलेक्चुअल, किसी की जानमारू।

फाटक पर सिनेमा का पोस्टर था, "This Happened One Night."

पास गये। ठहाके ज़्यादा सुने। लड़कियों के बड़े चर्चे! सुक़रात जवानों की इस आशिक़-मिज़ाजी के क़ायल हो गये। एक शेर याद आ गया—

'हज़ार पर्दों में छुप-छुप के बैठने वाले!
तुझे ख़याल की महफ़िल में लाके देख लिया।"

सुक़रात सोचने लगे, गुनाह भीं करते हैं कमबख़्त तो ख़याल की महफ़िल में? दुनिया में कोई जगह न मिली कि बदनसीबों को दिमाग़ के 'अलिफ़-लैला गार्डन्स' में पिकनिक के लिये जाना पड़ता है! सुक़रात तुरन्त इस आदत से उसके नतीजों तक पहुँच गये। अतृप्ति, अकर्मण्यता,

कायरता, लापरवाही, बेहद बातूनीपन, तैश, जोश, गुस्सा, और उसके बाद, सवाल का जवाब—जीरो।

महर्षि सोचने लगे, भारत में तो देवी देवताओं की बड़ी महिमा है, बड़ी पूजा है। सरस्वती माता अपने मन्दिर में सपूतों के खयाली हरम हुए देख कर लौट जाती होंगी बेचारी।......मगर नहीं। खयाल पलटा। आती हैं—कर्कशा होकर।

महर्षि ने 'पॉलिटिक्स' को जवानों की 'जाने-जहाँ क़त्तालेआलम' के रूप में छमकछल्लो-सी हर जबान पर उछलते देखा। बहुतों को ईमानदारी के साथ, अपने सीमित ज्ञान की चेतना और आत्मविश्वास के साथ भी, 'पॉलिटिक्स' के भक्त या शहीद के रूप मे देखा। मगर भक्तों से भी शहीदों की तादाद ज्यादा थी।

"काँग्रेस गवर्नमेण्ट कमजोर है। हमारी लीडरशिप बोदी है साली। महात्मा गाँधी की अहिंसा पागलपन की थ्योरी है। तलवार का जवाब तलवार से दो····

"आजकल यू० एन० ओ० की खबरें आ रही हैं। भई, कुछ भी कह लो, इण्टरनेशनल-फील्ड में इण्डिया ने बड़ी धाक जमा ली है....।

"जवाहरलाल ने बलवाइयों में कूद कर तलवार छीन ली। आग लगानेवालों को जाकर तमाचे मारे। दो मुसलमान लड़कियों को गुण्डों से बचाकर ले आये जवाहरलाल! साहब, कुछ कह लीजिये, हमारे जैसे लीडर तो दुनिया में किसी के भी नहीं हैं। क्या 'स्टेटमेण्ट' झाड़ा है, साहब, उन्होंने अमेरिकन-पाकिस्तानी प्रोपेगेण्डा के खिलाफ़ कि तबियत खुश हो गई। वाह, वाह! राशनिंग-शॉप पर क्यू में जाकर खड़ा हो गया हमारा प्राइम-मिनिस्टर!"

फिर छिन भर में गालियाँ बरसने लगीं, "बस हिन्दुओं पर ही अत्याचार और रौबबाजी करना जानते हैं। ट्रेटर गद्दार साले!"

नोआखाली, वेस्ट पंजाब में हिन्दुओं और सिखों की माँ-बहनों पर; बिहार, गढ़-मुक्तेश्वर और ईस्ट पंजाब में मुसलमानों की माँ-बहनों पर जो अत्याचार हुए हैं. उनका बदला एक-दूसरे की माँ-बहनों से लेने का जोश उन जवानों में बेहद था।

सुकरात बहुत देर तक कोने में छिपे-से खड़े सुनते रहे। किसी ने खास ध्यान भी नहीं दिया। सुकरात नये जमाने के विश्वविद्यालय और विद्यार्थियों को पहली बार देख रहे थे, इसलिये सतर्क और विचारमग्न थे। उन्होंने जवानों के राजनीतिक, दार्शनिक और चारित्रिक विश्वास पल-पल में गिरगिट से रंग बदलते देखे। दिन भर में चार बार कपड़े न बदले, चार फलसफे बदल लिये। घड़ी में सोशलिस्ट, घड़ी में नेशनलिस्ट, घड़ी में हिन्दू सभाई, लीग़ी, हिन्दुस्तानी, पाकिस्तानी, घड़ी में इण्टरनेशनलिस्ट, घड़ी में इंसान—फिर हिन्दू, फिर सिख, फिर मुसलमान! सुक़रात के ध्यान में साइकिलों के बहुत से घूमते हुए पहिये दिखाई देने लगे। मजा आया।

एक बार स्वर्ग में अकबर इलाहाबादी के साथ सुक़रात की बैठक जम गयी थी। दोनों दाढ़ीबाजों ने घण्टों बातों के मजे ले-लेकर दाढ़ियों पे हाथ फेरे थे। सुक़रात को मौक़े का एक शेर याद आया—

जैसा मौसम हो मुताबिक उसके मैं दीवाना हूँ।
मार्च में बुलबुल हूँ और जुलाई में परवाना हूँ।।

महर्षि को मजा आ गया। सुक़रात की सुक़रातियत जागी। चौड़े में आये। धीरे-धीरे, मस्ती के साथ दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए उन्होंने विद्यार्थियों से पूछा, "आप यहां पढ़ने आते हैं?"

"जी नहीं, घास छीलने। दिखाई नहीं देता आपको?" एक जवान ने नारंगी चूसते हुए इत्मीनान से कहा।

सुक़रात ने भी उसी इत्मीनान से जवाब दिया, "वह तो खैर

दिखाई देता है। मैं महज़ अपने सवालों की पहली कड़ी से चलना चाहता था।"

"अबे सी० आई० डी० का दरोगा है क्या ?" एक ने आवाज़ा कसा। दूसरा सुक़रात को सर से पाँव तक इम्तहानी नजर से घूर कर बोला, "सूरत से तो मरघट का रोजनामचा दर्ज करनेवाले दिखाई देते हैं आप। कौन हैं ?"

"सुक़रात"। सुक़रात ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा।

"सुक़रात कौन ?"

"एक आदमी।"

"पेशा क्या है ?"

"सवाल करना।"

"क्या सवाल है ? यहाँ क्यों आये हो ?"

"शामत। दाढ़ी घसीट लाई। सफ़ेद दाढ़ी को अक्सर इल्म से प्रेम होता है। ज्ञान का मन्दिर समझ कर यहाँ चला आया था। मगर देखता हूँ मैंने समझने में भूल की थी।"

"भूल कैसी ? यही यूनिवर्सिटी है।"

"काहे की यूनिवर्सिटी भैया ? अज्ञान की ?" सुक़रात ज़रा आगे बढ़ आये।

"अज्ञान क्या ?" एक ने तिनक कर पूछा।

"ऐसे ज्ञानी हो गये कि अज्ञान को नहीं जानते ?" महर्षि सुक़रात कहते हुए जरा और आगे बढ़ गये।

लोगों में कानाफूसी होने लगी, "फ़िलॉसफ़र मालूम होता है। इस देश का नहीं लगता। पहनावे और ढब-ढाँचे से हूबहू ग्रीक मूर्त्ति-सा

है। अरे, यह सुक़रात कहीं वह 'सॉक्रेटीज़' तो नहीं ?" लाल बुझक्कड़ शर्मा ने बूझा।

शेख़चिल्ली बेग मसानवी ने ज़रा ताज्जुब से पूछा, "सॉक्रेटीज़ कौन ?"

"अरे वही, प्लेटो का गुरु।" तीसरे ने सिगरेट फूंकते हुए कह दिया।

महर्षि खड़े-खड़े इन बातों का रस लेते रहे। एल० बी० शर्मा ने सुक़रात को एक बार फिर सिर से पैर तक देखा। शुबह तेज हुआ; सुक़रात की मूर्त्ति का ब्लाक किताबों में छपा देखा था। शक्ल तो मिलती है; मगर वह सुक़रात तो न जाने कब का मर चुका। उसे तो ज़हर दे दिया गया था। लाल बुझक्कड़ अपना कौतूहल न दबा सके, पूछा, "आप ही प्लेटो के गुरु सुक़रात हैं ?"

सुक़रात बोले, "प्लेटो का गुरु तो हूं, मगर आधा। मैंने तो उसे केवल प्रकृति का ही ज्ञान कराया था। अप्राकृतिक ज्ञान उसने किस गुरु से पाया, सो मुझे मालूम नहीं।"

"मगर वह सुक़रात तो मर चुका।"

"सुक़रात कभी नहीं मरता।"

"उसे ज़हर देकर मारा गया था। किताबों में लिखा है।"

"किताबों में अर्द्ध-सत्य लिखा है। सुक़रात को ज़हर अवश्य दिया गया था; परन्तु ज़हर, सूली, क्रॉस, आग, जेल के सीख़चे—पत्थर के औज़ारों से लेकर एटम बम तक—सुक़रात को न मार सके। सुक़रात नहीं मरता। सुक़रात सत्य है।"

जवानों ने घेर लिया। पल भर में सुक़रात को 'हीरो' बना डाला। कुर्सी लाओ! चाय लाओ! सोडा लेमोनेड लाओ।

सुक़रात ने कहा, "कुछ मत लाओ! सवाल का जवाब दो। नम्बर एक--पहले मुझे मरघट का रोजनामचा दर्ज करने वाला क्यों समझा? और अब कुर्सी के लायक़ क्यों समझा?"

जवान शर्मिन्दा हो गये। कहने लगे, "भूल हो गयी।"

"क्यों भूल हो गयी?"

"हमने आपको पहचाना नहीं था।"

"अब कैसे पहचाना?"

"आपके कहने से।"

"क्या पहचाना?"

"कि आप सुक़रात हैं?

"इसीलिये कुर्सी, चाय, सोडा के वास्ते भगदड़ मची? मैं सुक़रात न होता तो क्या आप मुझे इतना आदर देते? आपकी नज़र में सुक़रात सब कुछ है और मरघट का रोजनामचा दर्ज करने वाला एक कामकाजी आदमी कुछ भी नहीं? उसकी, उसके पेशे की आप बेइज्जती कर सकते हैं? मखौल उड़ा सकते हैं?"

जवानों की जलती सिगरेटें उँगलियाँ जलाने लगीं। चौंक कर जवानों ने उन्हें जमीन पर फेंका और पैरों से कुचल कर बुझा दिया।

सुक़रात ने अपने शिकारों को सांस लेने का मौका देकर, फिर नये सिरे से सवाल किया, "आप लोग अभी किन माँ-बहनों के अत्याचार की बातें कर रहे थे?"

"जी हमारी माँ-बहनें! हिन्दू, सिख और मुसलमान उन पर अमानुषिक अत्याचार कर रहे हैं।"

"तो आप क्या करेंगे? बदला लेंगे?"

"जी हाँ!"

"किससे ?"

"उनकी औरतों से।"

सुक़रात ने कहा, "यानी उनकी माँ-बहनों से। बदले में वह फिर आपकी माँ-बहनों पर ज़ुल्म ढायेंगे। फिर आप अपनी माँ-बहनों का बदला चुकाने जायेंगे! फिर वह अपनी माँ-बहनों का बदला चुकाने आयेंगे। क्यों न ? गोया कि माँ-बहनें न हुई, आपके इन्तक़ाम की तोप का गोला हो गयीं—जी चाहा जहाँ दाग़ दिया। माँ बहनें बड़ी सस्ती हैं आपकी निगाह में ?"

एक जोशीला युवक आगे बढ़ कर बोला, "सस्ती नहीं, सती हैं वे। हमें अपनी माँ-बहनों के सतीत्व का बदला लेना है, हमें उनके सतीत्व की रक्षा करनी है। हमें अपनी माँ-बहनों·····।"

सुक़रात ने बात काट कर, उंगली के इशारे से सामने की ओर सब का ध्यान आकर्षित किया; कुछ लड़कियाँ जा रही थीं। सुक़रात ने पूछा, "यही हैं न आपकी माँ-बहनें, जिनके हुस्न और नमक और अन्दाज़े-माशूकाना के मजे चटख़ारे के साथ लेते हुए आप अभी-अभी अपनी ज़बानें ढीली कर रहे थे, अपने ख़याली हरम बसा रहे थे ? क्या आप सब अपनी माँ-बहनों को इसी नज़र से देखते हैं ? फिर आपको बुरा मानने का हक़ ही क्या है जब कोई दूसरा शख़्स आपकी माँ-बहनों को इसी नजर से आकर देखता है ? पुरुष जाति की कमज़ोरियों के लिये स्त्री-जाति की दुर्दशा क्यों हो ? इसी तरह स्त्री को आप समानता का अधिकार देते हैं ? इसी तरह क्या आप सामाजिक कमज़ोरी को बदला ले लेकर दूर करेंगे ? इससे तो आपका शैतान और भड़केगा और धीरे-धीरे उसका नतीजा यही होगा कि स्त्री-मात्र आपके लिये भोग्या होगी। पशुओं की तरह रिश्ते नहीं माने जायेंगे। आप पशु हो जायेंगे।"

जवानों ने जोश में आकर नारे लगाये, "शेम, शेम!"

नारे सुन कर सुक़रात थक गये। इतनी मानसिक-थकान तो उन्होंने अज्ञान के क्षेत्र में भी अनुभव नहीं की थी। सोचने लगे, यह जवान तो ऐसे बेढब आशिक़ मिज़ाज हैं कि सत्य को भी माशूक़ बना डालते हैं। सच्चाई को लेक्चर बनाकर अपने हर तरह के उद्‌गार जिस जोश के साथ प्रकट करने को वह तत्पर रहते हैं, उसी जोश के साथ वे माँ-बहनों पर अत्याचार करने को भी तत्पर रहते हैं।

सुक़रात ने खट्-से लम्बी डण्डौत की और कहा, "तुम गुरू, हम चेला! सच्चा ज्ञान यहीं आकर पाया—मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं बिरंचि सम। नमस्कार!"

महर्षि चल दिये। विद्यार्थियों ने उन्हे घेर लिया। कोई ऑटोग्राफ़ मांगने लगा, कोई फ़ोटोग्राफ़। विद्यार्थियों ने अगले दिन यूनियन हॉल में उनसे भाषण करने का भी बहुत अनुरोध किया, सुक़रात को 'एड्रेस' देने की ठानी; मगर सुक़रात चले गये।

⌘ ⌘ ⌘

हम ?—हम !—पोलीटीशियन !

सुक़रात की तबीयत इतनी उखड़ी कि फिर से ब्रह्म हो जाने को जी चाहने लगा। फिर सोचा, जहाँ सत्यानाश वहाँ साढ़े सत्यानाश भी सही—बाक़ी दुनिया भी देख लो। सोचकर आगे बढ़े।

एक तीन-मना ठोस चमड़ी का पुतला, बड़ी-बड़ी मूछोंवाला, दम्भी, झूठी मुस्कान और झूठे नमस्कार करता हुआ, खद्दर की पोशाक पहनकर आता हुआ दिखाई दिया। लम्बान चौड़ान ढब-ढांचे से सुक़रात को लगा, हो न हो यह वही गुण्डा है जिससे सब लोग बदला लेना चाहते हैं। सूरत पर शराफ़त कहीं से टपक ही नहीं रही। सड़क पर जिस तरफ़ से यह शख़्स निकलता है लोग डर कर हाथ जोड़ते हैं; यद्यपि यह बड़ी विनय के साथ लोगों से व्यवहार करता है। महर्षि

ने सोचा यह गुण्डा भयंकर है, इसके काटे का तो मन्त्र भी नहीं दिखाई देता। फिर भी आगे बढ़कर सवाल पूछने में ज़रा संकोच न किया। परन्तु इसके पहले कि वह कुछ पूछें, वह बड़ी मूछोंवाला ठोस चमड़ी का तीन मना पुतला नमस्कार कर, झुक कर, मुस्करा कर, विनय के साथ बोला, "कहिये महाशयजी, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

सुक़रात ने भी उसी तरह हाथ जोड़कर डबल खीसें निपोरी। फिर कहा, "भगवन्, मेरे मन में एक सन्देह है। क्या आप ही वह गुण्डे हैं जिससे गंवार, पढ़े-लिखे धर्ममूर्त्ति-मज़हबपरस्त, विद्यार्थी,—सब बदला लेना चाहते हैं?"

महर्षि के सवाल से वह ठोस चमड़ी का पुतला चौंका। कहा, "गुण्डा? मैं तो सेवक हूँ महाशयजी!"

"किसके सेवक?"

"जनता का सेवक!"

"तो जनता के यहाँ आप बर्तन मांजते हैं, [या झाड़ू लगाते हैं, या ढोर चराते हैं?"

ठोस चमड़ी का पुतला गुर्राया, "मैं ढोर चराने वाला सेवक नहीं महाशयजी! मैं नेता हूँ। मैं सम्पादक हूँ।"

"यह कैसी सेवा है, जनाबवर?" सुक़रात ने अपनी दाढ़ी के साथ खेलते हुए पूछा।

ठोस चमड़ी का तीन मना पुतला जोश में आकर महर्षि को लेक्चर पिलाने लगा। उसने कहा, "मैं आन्दोलनों में जेल गया। मैंने बड़े-बड़े लेक्चर दिये। बड़ी ईमानदारी के साथ निष्कपट भाव से देश की सेवा की। मैं नेता बन गया। परन्तु नेता बनने के बाद मुझे यह गुर मालूम हुआ कि ईमानदारी और निष्कपट देश-प्रेम केवल वालण्टियरों के लिये ही है। नेता के लिये निस्वार्थ सेवा और निष्कपट प्रेम

घातक है। सो महाशयजी, आपकी कृपा से मैंने बड़ी बुद्धि-चातुरी और योग्यता के साथ नेता का पद प्राप्त किया है। हें हें: !

"आप नहीं जानते महाशयजी, हम नेता लोगों को जनता और अपने सहयोगी कार्यकर्त्ताओं पर प्रभुत्व जमाने के लिये बड़ी-बड़ी पोलिटिकल पार्टियाँ बनानी पड़ती हैं। उन पार्टियों को लेकर हम नेता लोग आपस में सिर फुटव्वल करते हैं। असेम्बली की मेम्बरी, सेक्रेटिरियट की अफ़सरी, या कम से कम प्रान्त की मिनिस्टरी का ज़िम्मेदार ओहदा प्राप्त करने के लिये हम अपनी एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देते हैं।

"लोग हम पर यह आक्षेप लगाते हैं कि हम रिश्वतें लेते हैं। हम अँग्रेज़ी राज के ज़माने के अफ़सरों से भी ज्यादा अत्याचारी और स्वार्थी हैं। सो महाशय जी, इसमें भी जनता की सेवा का ही भाव आप समझियेगा। बात यह है कि अँग्रेज़ी अफ़सरों ने हमारे ऊपर अत्याचार किया था, इससे हममें नयी चेतना और क्रांति आई थी; अब यदि हम अत्याचार न करें तो लोगों में नयी चेतना और नयी क्रांति कैसे उत्पन्न हो ? रही रिश्वत लेने की बात, सो उसके विषय में हमारा विचार यह है कि हम ब्लैक-मार्केट वाले सेठों से रिश्वतें लेकर, ब्लैक-मार्केट को बढ़ावा देकर सच्ची लगन से अपनी और कांग्रेस की सेवा करते हैं। कांग्रेस की सेवा देश की सेवा है, देश की सेवा जनता की सेवा है, इसलिये हमारा रिश्वतें लेना जनता की सेवा करने के भाव से ही होता है। सोचिये, हम कांग्रेस फ़ण्ड के लिये दर-दर पैसा माँगने नहीं भटकते। एक मुश्त किसी भी सेठ से ले लेते हैं। उससे हमारा भी कल्याण होता है और कांग्रेस का भी। कहावत प्रसिद्ध है कि 'जिसका खाइये उसी का गुन गाइये', इसलिये हम अपनी जनता का गुण गान करते हैं। अपनी जनता का मन हथेली में लिये-लिये घूमते हैं। गांधीजी और पं० जवाहरलाल नेहरू यह काम थोड़े ही कर सकते हैं। वह तो बस हमारी

जनता को डराना-धमकाना ही जानते हैं। कहने को तो यह बड़े-बड़े नेता हैं। परन्तु न तो इन्हें नेता बनने की कला ही मालूम है, और न दांव-पेंच के अखाड़े। इसीलिये तो कांग्रेस मुस्लिम लीग से हार गई। इस हार से हमारी जनता बहुत दुःखी है। हमारी जनता यह नहीं चाहती कि इस पराजय के बाद उसे अब उन नीच किसानों और मज़दूरों से भी हार खानी पड़े, जिनके नेता बनकर हम सेठों के सेवक हैं।

"इसीलिये हम अखबार निकाल कर अपनी जनता के गुण गाते हैं। हमारी जनता सेठ-महाजनों की जनता है। इसीलिये हमारी जन-शक्ति प्रबल है। हम नेता उसी प्रबल जन-शक्ति के सहारे अपने तोंद की चर्बी बढ़ाकर जनता के सेवक कहलाते हैं। तो समझे महाशय, हम गुण्डे नहीं है—पोलिटीशियन हैं, सम्पादक हैं—सेवक हैं। हें: हें: हें:।"

सुकरात ने दाढ़ी हिलाकर कहा, "हाँ जनाबवर, आप सब कुछ हैं—फ़क़त आदमी नहीं हैं।"

ठोस चमड़ी का नेता गम्भीरता के साथ सिर हिलाकर बोला, "हाँ-आँ-आँ, आप ठीक कहते हैं महाशय। मैं आदमी नहीं, बड़ा आदमी हूँ।"

सुकरात बोले, "बाम्हन नहीं, महाबाम्हन। आप धन्य हैं। जाइये। मुर्दा जनता का कफ़न खसोटिये। अपने तोंद की चर्बी बढ़ाइये। लेकिन कब तक?"

कहकर महर्षि सुकरात दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए अनमने भाव से आगे बढ़ गये।

ठोस चमड़ी का तीन मना नेता उन्हें घूर-घूर कर देखता रहा, फिर सोचने लगा, "यह बुड्ढा किस पार्टी का जासूस है?"

× × × ×

हम चौड़े बाज़ार सकड़ा !

सुकरात को आगे चल कर फ़ौजी वर्दियां पहने हुए नौजवान दिखाई दिये। पता लगा कि वे राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघ और मुस्लिम नेशनल गार्ड और अकाली दल के जोशीले और बहादुर जां-निसार सिपाही हैं। महर्षि को यह भी पता लगा कि यह लोग इतने वीर, निडर और जोशीले कौमपरस्त हैं, कि महज़ अफ़वाहों को सुनकर ही आपस में खून की नदियां बहा डालते हैं। यह बहादुर इतने अक्लमन्द हैं कि कौवे के पीछे दौड़-दौड़ कर अपना कान आप ही काट लेते हैं, और फिर भी कौवे को ही दोषी ठहराते हैं। इन लोगों को अपनी बेवकूफ़ी पर इतना विश्वास है कि दूसरों से अक्ल की बात सुनना भी यह लोग पसन्द नहीं करते। सुनने जाओ तो छुरी दिखाते हैं।

सुकरात को देखते ही नौजवान लपके। इससे पहले कि सुकरात उनसे कुछ सवाल पूछें, उन क़ौमपरस्त बहादुरों ने उन्हें घेर कर हजारों सवाल एक साथ पूछ डाले, "तुम कहाँ के शरणार्थी हो बुढ़े? ईस्ट-पंजाब के कि वेस्ट पंजाब के? तुम्हारे ऊपर हिन्दुओं ने, सिखों ने, मुसलमानों ने कौन-कौन से अत्याचार किये हैं? हमें अपनी दर्दभरी कहानी सुनाओ जिससे हमारा खून उबल पड़े: हमारे मजबूत हाथ अपने दुश्मनों पर दना-दन बम के गोले बरसाने लगें। हमारी स्टेन-गनें, ब्रेन-गनें, मशीन-गनें टॉमीगनें, राइफलें, पिस्तौलें, और छुरियां तुम्हारा बदला लेने के लिये तपड़ रही हैं, शरणार्थी। अपनी दर्दभरी कहानी सुनाओ।"

महर्षि सुकरात ने दर्द से गर्दन डाल दी, फिर धीरे-धीरे टूटी हुई आवाज़ में कहने लगे, "हां भैया, मैं शरणार्थी हूँ। हैवानियत ने मुझसे मेरी धरती छीन ली है; मेरा घर-द्वार छीन लिया गया है। मेरी मां बहनों को बेइज्जत किया है। मेरे दुधमुंहे बच्चों को मौत के घाट उतारा है। हैवानियत ने मेरे लाखों, करोड़ों भाइयों का धर्म जबर्दस्ती बदल कर उन्हें हैवान बना दिया है। हैवानियत ने इन्सान की अक्ल

को जला दिया है, दफना दिया है । हैवानियत अब मुझे भी हैवान बनाना चाहती है । वह चारों ओर से मुझे घेरे हुए है । मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ । मुझे हैवानियत से बचाओ ।"

इस नये क़िस्म के शरणार्थी की दर्द-भरी कहानी सुनकर उन बहादुर क़ौम-परस्तों का खून तो क्या अक्ल भी न उबली । अपनी सकपकाहट को डिसिप्लिन से दबाकर क़ौम-परस्तों में से एक ने पूछा, "आप कौन हैं ?

सुकरात ने कहा, "मैं आदमी हूँ !"

क़ौमपरस्त ने डपट कर कहा, "पूरा नाम बतलाओ ! आदमी राम या आदमी सिंह या आदमी हुसैन । कौन हो तुम ?"

सुक़रात को बाबू का नाम बताना याद आ गया । चट से कहा, "मेरा नाम रामसिंह हुसैन आदमी है ।"

इस नाम से क़ौमपरस्त बड़े चकराये । उन्हें गुस्सा भी आया । उन्होंने सोचा, हो न हो, यह बुड्ढा दुश्मन का जासूस है । यह ख्याल आते ही क़ौमपरस्तों का खून उबल पड़ा । लाल आंखें करके वे लोग महर्षि की तरफ बढ़े । किसी ने उनकी दाढ़ी खीची, किसी ने गर्दन नापी । जोशीले क़ौमपरस्तों ने महर्षि को अचार के घड़े की तरह पकड़-पकड़ कर हिलाना शुरू कर दिया; और पूछने लगे, "बोल बुड्ढे ! बोल साले ! तेरा धरम-मजहब कौन सा है ?"

इतनी दुर्गत होने पर भी महर्षि टस से मस न हुए, कहते ही रहे, 'मैं आदमी हूँ, आदमी हूँ, आदमी हूँ । मेरा धर्म आदमीयत है, मैं अपना धर्म नहीं छोड़ूंगा । मैं सत्य का मार्ग नहीं छोड़ूंगा ।" महर्षि की यह जिद, उनका धर्म और उनकी जाति सुनकर क़ौमपरस्त बड़े चकराये । हार कर उन्होंने महर्षि का गला छोड़ दिया । उनका बैर तो हिन्दू, सिख, मुसलमान नामों में एक दूसरे के अपरिचय, परायेपन, शंका तथा भय से था ।

आदमीयत धर्म को माननेवाले आदमी सुक़रात का गला उन्होंनें छोड़ तो दिया, मगर शङ्का न गयी। आदमी और उसके आदमीयत-धर्म के प्रति उनके मन में अविश्वास-भरा कौतूहल था। वे लोग पसोपेश में पड़ गये। अचानक एक क़ौमपरस्त राष्ट्रीय स्वयं सेवक को अपने पड़ोस में रहने वाले एक लेखक की याद आगई। यों तो उस लेखक को मुहल्ले में सब लोग घनचक्कर कहते थे, मगर उसके मुँह से अक्सर सत्य और मानवता और आदमीयत क़िस्म के शब्द सुनाई पड़ जाते थे। इसलिये वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक अपने कप्तान से हुकुम लेकर फौरन जाकर उसे बुला लाया।

लेखक महाशय महर्षि सुकरात के परीक्षक होकर आये थे। अपने मोटे चश्मे के अन्दर से उन्होंने महर्षि को आंख गड़ाकर देखा और अपनी महीन आवाज से पूछा, "आप कौन वादी हैं?"

महर्षि ने कहा, "मैं सम्वादी हूँ। आप क्या पंचम हैं?" कह कर महर्षि की आंखें शैतानियत से मुस्कुराई।

लेखक महोदय महर्षि के इस प्रश्न को एक सेकेन्ड तक समझ न पाए; फिर चौंक कर जब ख्याल पहुँचा तो मोटे चश्मे के अन्दर से उनकी आँखें बिज्जू की तरह निकल पड़ीं। अपनी महीन आवाज की सीमा में गरज कर उन्होंने कहा, "हे वृद्धवर, आपने मुझको क्या समझ रखा है? मैं सारा हिन्दी शब्द-सागर घोल कर पी चुका हूँ। पंचम भंगी को कहते हैं, यह मैं जानता हूँ। अरे बुड्ढे खूसट, तूने मुझे भंगी कह दिया? ठहर, मैं तेरे ऊपर एक प्रगतिशील लेख लिखूगा, क्रान्तिकारी कविता लिखूंगा। मै अपनी लौह लेखनी से तेरी पोल खोलने के लिये बड़े-बड़े उपन्यास और कहानियाँ लिखूंगा। मैं लेखक हूँ, लेखक!"

सुक़रात ने कहा, "भैया रे, ऐसे लेखक को तो भंगी पहले ही होना चाहिये। लेखक क्या भङ्गी नहीं होता?"

"नहीं, लेखक मानवतावादी होता है, राष्ट्रवादी होता है ।"

महर्षि बड़ी नर्मी के साथ पूछने लगे, "तो भैया लेखक, आज तुम अपने मानवतावाद को लेकर कहाँ छिपे बैठे हो ?"

"मैं आजकल शाश्वत सत्य का चिंतन कर रहा हूँ ।" लेखक ने अनंत की ओर देखते हुए गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया ।

"शाश्वत सत्य क्या हैं ?" सुकरात ने पूछा ।

"शाश्वत सत्य ?" लेखक ने साश्चर्य कहा, "अरे आप शाश्वत सत्य को नहीं जानते ? यही तो हम लेखकों की जान है । इसी पर तो हमारा मानवतावाद, साम्यवाद, प्रगतिवाद आदि समस्त वादविवाद टँगा हुआ है । शाश्वत सत्य परम सत्य है । वह नित्य है ।"

"नित्य क्या है ?" सुकरात ने पूछा ।

"जो अनित्य न हो ।" लेखक ने कहा ।

"अनित्य क्या है ?" सुकरात ने पूछा ।

"यही तो मेरे चिंतन का विषय है वृद्धवर—शायद मेरे ऐसा महान लेखक ही नित्य-नित्य नहीं होता । इसलिए मैं ही अनित्य हूं । मैं यही सोच रहा हूँ ।" लेखक ने चिंता में मग्न होकर कहा ।

सुकरात ने पूछा, "कब तक सोचते रहोगे लेखक ?"

लेखक ने बड़ी मजबूरी के साथ कहा, "जब तक यह अनित्य नित्य न हो जाये ।"

"और तुम्हारा मानवतावाद ?" सुकरात ने पूछा ।

"वह तो शाश्वत है !" लेखक ने सरलतापूर्वक समस्या हल कर दी ।

सुकरात की आवाज में उत्साह न रहा । थके हुए स्वर में बोले, "अच्छा है, तुम शाश्वत को अपनी कल्पना में सुलझाते रहो, और

सत्य को खो जाने दो। जब मानव न रहे तो मानवतावाद का प्रचार करना। तुम्हें सहुलियत होगी। मुर्दों से बढ़ कर शान्त मानव तुम्हें पृथ्वी पर और न मिलेगा। तुम मृत्यु में शाश्वत सत्य को देखना और खुद भी मुर्दा हो जाना।"

लेखक ने तुनक कर कहा, "तो क्या आप चाहते हैं कि हम अपनी लेखनी से अनित्य का उल्लेख करें? अनित्य तो सामयिक साहित्य है। सामयिक साहित्य को प्रोपेगेण्डा-साहित्य भी कहते हैं। हम बड़े साहित्य-स्रष्टा हैं। हम केवल अपना प्रोपेगेण्डा छोड कर और किसी का भी प्रोपेगेण्डा नहीं करते। हम शाश्वत सत्य की खोज में रहा करते हैं। हम उन जटिल और गूढ़ समस्याओं पर विचार किया करते हैं जो कल की दुनिया के सामने आनेवाली हैं।"

"और आज की समस्याओं के विषय में आपका क्या विचार है?" सुकरात ने बड़ी विनय के साथ पूछा।

लेखक ने आत्मगौरव से तनकर अपनी महीन आवाज में भरसक गंभीरता लाकर कहा, "आज की समस्याओं के विषय में तो मैं अपने विचार दस वर्ष पहले ही प्रकट कर चुका हूँ। मैंने अपने उन गम्भीर विचारपूर्ण ठोस लेखों में सब बातें स्पष्ट कर दी थीं। देखिये हंस, माधुरी, सरस्वती, विशाल भारत वगैरह-वगैरह, वर्ष फलाँ-फलाँ, अंक फलाँ-फलाँ, पेज फलाँ-फलाँ.........."

तमाम जोशीले कौम-परस्त—हिन्दू, सिख, मुसलमान इस शाश्वत-अशाश्वत के झगड़े में निकम्मे बने खड़े थे। युद्ध-क्षेत्र में योद्धाओं को निकम्मा खड़ा रहना खलता है।

राष्ट्रीय स्वयं सेवकों के कप्तान ने बिगुल बजाया। एक राष्ट्रीय स्वयं-सेवक फौरन अपनी जगह से चाभीदार पुतले-सा घूम पड़ा और 'वाम-दक्ष' (लेफ्ट-राइट) करता हुआ लेखक के पास पहुँचा, खट से दोनो पांव जोड़ कर खड़ा हो गया। पेंतरा बदल कर पिस्तौल निकाली,

हिटलरी ढंग से हाथ उठा कर पिस्तौल की नोक के सामने लेखक से पूछा, "पता लगा यह कौन है ?"

लेखक ने घबराकर विनयपूर्वक कहा, "बन्धुवर्य, किसी सज्जन पर पिस्तौल तानना मानवतावाद के विरुद्ध है। कृपया इसे मेरे सामने से हटा लीजिये।"

स्वयंसेवक वैसे ही खड़ा रहा। शरीर भर में केवल होठ ही हिले, "यह नहीं हो सकता। यह कौन है ?"

'ये—ये ? जी, यह तो नित्यवादी है।"

"नित्यवादी क्या ?"

"जी, यह नित्य में सत्य को देखता है। मैं अनित्यवादी हूं शाश्वत सत्य देखता हूँ।"

"साफ-साफ कहो। इसमें कुछ बुराई है।

"नहीं। वैसे तो—अ—बुराई नही है। परन्तु···मेरे दृष्टिकोण से बुरा है।"

"किसके हक में बुरा है, हिन्दू धर्म के हक में ?"

"सिखों के हक में ?"

"इस्लाम, मुस्लिम मिल्लत के हक में ?"

"किस के हक में यह आदमीयत धर्म मानने वाला बुड्ढा बुरा है ? जल्दी कहो।"

तीनों कप्तानों ने अपने अपन बिगुल बजा दिये।

मानवतावादी लेखक ने देखा कि बिगुल बजाते ही तीनों किस्म के कौमपरस्तों के चार-चार नौजवान वाम-दक्ष, लेफ्टराइट करते हुए उसके पास आगये। खट से दोनों टांगे मिलाई, पैंतरा बदला, और पिस्तौल वाला हिटलरी हाथ तान दिया।

बेचारे मानवतावादी लेखक की मानवता कुण्ठित हो गयी।

तीनों किस्म के पिस्तौलबाज नौजवान मशीन की तरह खटाखट मुंह खोलने लगे, "साफ-साफ कहो। एक मिनट का वक्त दिया जाता है। मरने से पहले असत्य बोलना पाप है। रामनाम सत्य है।"

लेखक की जान मरने से पहले ही आधी हो गयी। बार-बार चश्मे में भाप भरने लगी। बेचारे को बार-बार चश्मा उतार कर साफ करना पड़ता था। हाथ काँप रहे थे। चश्मा हाथों से छूट पड़ा। वह उसे उठाने के लिये झुका। पिस्तौल वाले हाथ भी झुके। लेखक इन अग्नि-जिह्वाओं से अपनी पीठ को घिरा हुआ देखकर, बगैर चश्मा उठाये ही सीधा खड़ा हो गया। पिस्तौली हाथ खट से सीधे हो गये। होट फड़के, "जल्दी बोलो। आधा मिनट। रामनाम—"

पसीने से तरबतर लेखक पत्थर की मूर्ति-सा बनकर बोलने लगा, "क्या बोलूं ?"

"देसी भाषा में बताओ, इसका सत्य-वत्य क्या बुरा है ? अगर तुम अच्छी तरह समझा सके तो छोड़ दिये जाओगे।"

जीवनदान के आश्वासन से लेखक में उत्साह आया। चेहरे पर चमक आई। हकला कर कहना शुरू किया, "हालांकि विचार ऊँचे हैं इसलिए साहित्यिक भाषा ही····मगर····मैं तो देसी भाषा में ही बता दूंगा। जरा मुझे चश्मा उठा लेने दीजिये। ये—ये पिस्तौलें जरा दूर—"

होठ खुले। बन्द हो गये। हुकुम हवा में फैल गया, "ऑर्डर, ऑर्डर !" लेखक ने झट से चश्मा उठाकर साफ किया।

फिर पूछा गया, "जल्दी बताओ। इसके और तुम्हारे सत्य में क्या फर्क है ?"

चश्मा जल्दी-जल्दी साफ करना पड़ा। दिल की धड़कन का पूछना

ही क्या ? लेखक अन्दर ही अन्दर झुंझला रहा था कि कहां मुसीबत में आ फँसा। किसी राष्ट्रीय स्वयंसेवक या मुस्लिम नेशनल गार्ड पर तो कोई नाराज हो ही नहीं सकता। वह तो बात का जवाब छुरी से देते हैं। मन-वचन-काय से घोर अराष्ट्रीय होते हुए भी, वज्र-मूर्ख होते हुए भी, प्रस्तर युग के जंगली मानव से अधिक असभ्य होते हुए भी, ये दम्भी नौजवान खुद को दुनिया की तीन-चौथाई बुद्धि का स्वामी और बाकी एक-चौथाई बुद्धि का ठेकेदार समझते हैं। राष्ट्रीयता, धर्म और देशप्रेम की चार मोटी-मोटी बातें जान कर मानव संस्कृति का संहार करने वाले इन भय और घृणा के प्रचारकों से मानवतावादी बेचारा क्या मुंह लेकर मुंह लगे ? प्राणों की चिन्ता को लेकर वह अत्यधिक उत्तेजित था। मन ही मन में सारी दुनिया को कोस रहा था। चश्मा पहनते हुए उसकी नजर अपने सामने खड़े अजनबी नित्यवादी बूढ़े पर पड़ी। लेखक का सारा क्रोध सुकरात पर ढुलक पड़ा। जबान आप ही आप देसी भाषा में बोल उठी, "साहब, मेरे और इसके सत्य में इतना फर्क है, कि मैं तो अनित्यवादी हूँ। मैं और मेरा 'मूड' भी अनित्य है। इसलिए मैं तो सत्य को कभी-कभी देखता हूँ। मगर यह कमबख्त तो रोज-रोज सत्य को देखता है।"

होठ खुले, "रोज-रोज सत्य देखने से हिन्दू धर्म में कौन-सी बुराई आ जायगी ?"

"रोज-रोज सत्य देखने से सिख-धर्म में कौन-सी बुराई आ जायगी ?"

"रोज-रोज····।"

मिनिस्टर की कसम की तरह तीनों रंग के कौमपरस्त यकेत-बाद दीगरे होठ फड़का गये। लेखक की जान अन्दर ही अन्दर फड़क गयी।

महर्षि ने लेखक की मनोव्यथा देखकर अपने मन में करुणा पाई। स्वयं ही बोल उठे, "रोज़-रोज़ सत्य देखने से आप गले काटना छोड़कर गले मिलने लगेंगे।"

लेखक ने उल्लसित होकर कहा, "हाँ-हाँ, यही तो मानवतावाद है। यही शाश्वत सत्य है।"

"फिर शाश्वत ?" पिस्तौलों ने झटका खाया, "जल्दी मतलब समझाओ। अगर हम गले काटना छोड़कर गले मिलने लगेंगे तो उससे हिन्दू-धर्म का क्या नुक्सान होगा ? सिख-धर्म······? मुस्लिम मिल्लत······?"

लेखक ने उल्लसित होकर कहा,"जी अगर आप गले काटना छोड़कर गले मिलने लगेंगे तो सर्वत्र मेरे मानवतावाद का प्रचार हो जायेगा। यह दंगे—नहीं-नहीं—यह धर्मयुद्ध और जिहाद बन्द हो जायेंगे। आनन्द ही आनन्द होगा उस दिन।"

"चुप!" तीनों कप्तानों ने बिगुल बजाये।

विचार होने लगा, "अगर रोज़-रोज़ सत्य देखने से हम गले काटना छोड़कर गले मिलने लगेंगे, तो यह धर्म-युद्ध और जिहाद बन्द हो जायगा। युद्ध बन्द हो जाने से हमारा बदला कैसे पूरा होगा ? फिर हम किनकी माँ-बहनों से किन माँ-बहनों का बदला लिया करेंगे ? हमारी क़ौम-परस्ती, मज़हब-परस्ती, हमारा जोश फिर दुनिया क्योंकर देख पायेगी ? हमारा नाम स्वर्णाक्षरों में कैसे लिखा जायेगा···नहीं-नहीं। यह असम्भव है। नामुमकन है। नामुमकिन है। इस बूढ़े आदमी को मार डालो।"

तय हो गया। बिगुल बजा।

लेखक यह फ़ैसला सुनते ही विचलित हो उठा। वह चिल्लाया, "नहीं-नहीं, इन्हें मत मारो। यह कोई भी हों, महापुरुष हैं। अब मेरी

समझ में आया है कि प्रेम ही शाश्वत-सत्य है, जो रोज़ और प्रतिक्षण आदमी के दिल की धड़कन के साथ रहता है। यह सत्य हमें प्रतिक्षण देखना होगा। इन महापुरुष को मत मारो। सत्य को मत मारो ! हत्यायें बन्द करो—"

तीनों कप्तानों ने ज़ोर से बिगुल बजाकर उसकी आवाज़ बन्द करनी चाही, परन्तु लेखक बोलता ही रहा। उसकी बातें अनसुनी करके तीनों क़िस्म के क़ौमपरस्तों के लीडर इस बात पर कान्फ़्रेंस करने लगे कि कौन सी क़ौम इस बुड्ढे को पहले सज़ा देगी।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक कहते थे, हिन्दू-धर्म इसे पहले मारेगा।

सिखों को पहले झटके का अधिकार चाहिये।

काफ़िर को पहले मार कर मुसलमान ग़ाज़ी बनना चाहते थे।

बड़ी-बड़ी बहसें हो गयीं, फ़ैसला ही न हो पाता था। एक सुझाव यह भी आया कि पहले सिख गर्दन उड़ाकर झटका पूरा करें; उसके बाद हिन्दू उसके धड़ को पकड़ कर पेट में छुरा भोंक दें, और हिन्दुओं के बाद मुसलमान पीठ में छुरा भोंक दें। मगर मरे को मारने में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बहादुरी न समझते थे (हालांकि करते यही थे), इसलिये झगड़ा और बढ़ गया। कान्फ़्रेंस खतम हो गयी। तीनों क़ौमपरस्त कप्तानों ने बिगुल बजा दिये। चारों तरफ़ जवाँमर्दों ने तोपें, बन्दूक़ें तान दीं।

मानवतावादी लेखक इस सारे दृश्य से बड़ी ही व्यथा पा रहा था। बौद्धिक रूप से वह वर्षों से मानवता का पोषक रहा है। उसने अपनी अनेकों साहित्यिक कृतियों में मानवता की गाथा गाई थी। किन्तु यह सब कुछ किताबी था। कोने में बैठे-बैठे विचारों के स्वप्नों में मानवता की भावना से उसे तृप्ति और शान्ति मिलती थी। परन्तु मानवता की भावना का वास्तविक महत्व आज, इस अमानुषिक वातावरण में, उसे

स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ा। फ़ौज की जड़ 'डिसिप्लिन' मनुष्य को एक क्षण के लिये भी मनुष्य नहीं रहने देती। मनुष्य के मस्तिष्क को इतनी कठोरता से नियम-बद्ध करने का एक ही परिणाम होता है—बुद्धि की अगति; चेतना का विकृत विकास, जिससे मनुष्य को कदापि मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं होती। और न हो सकती है। मृत्यु को किसी भी भावना के नाम पर मनुष्य में प्रोत्साहित करना मनुष्य को उसके स्वभाव के प्रतिकूल ले जाना है। कायरता इस रूप में जाती नहीं, बल्कि बढ़ जाती है। वह सब से बड़ा कायर है जिसके हाथ में एक बन्दूक़ है या तलवार है। वह सब से बड़ा कायर है जो प्रेम, धर्म, देश, राष्ट्र और मानवता—किसी भी नाम पर बन्दूक़ तान कर फ़ौजी मार्च करता है। बर्बर युग की अविकसित बुद्धि इन हिंसक पशुओं को योद्धा कहकर उनको पूजा देती थी; और उस समय के अनुसार दे सकती थी। परन्तु आज सेना और युद्ध की भावना को मनुष्य यदि प्रोत्साहन देता है, तो वह अपने को धोखा देता है। एटम तक अबाध गति से पहुँचने वाला गति-शील मनुष्य जानता है कि मिलिटरी की सी जड़ डिसिप्लिन—वह बौद्धिक, दार्शनिक, धार्मिक राजनैतिक अथवा शारीरिक—किसी रूप की भी हो—मानव समाज को कदापि गति नहीं दे सकती। संयम के साथ-साथ जीवन का उद्देश्य महान् होना चाहिये। उद्देश्य छोटा होने पर संयम की हृदय की कठोरता, क्रूरता बन जाती है।

मानवतावादी लेखक इन वर्दी-पोश क़ौम परस्तों के दिलों में मानवता के लिये स्थान न देखकर, उन्हें इस तरह युद्ध-रत देख कर बेहद परेशान हो उठा। अपने को अक्षम पाकर वह महर्षि से कहने लगा, "आप इन्हें समझाइये। आप सत्य को मुझसे भी अधिक सरल भाषा में जनता तक पहुँचा देते हैं। मैंने अभी-अभी देखा है। आप चुप क्यों खड़े हैं? यह हमको आपको मार डालेंगे। खुद आपस में कट कर मर जायेंगे। लाखों खून खराबे कर डालेंगे। मानवता के नाम पर इन्हें रोक लीजिये।"

सुक़रात इतनी देर से चुपचाप खड़े हुए दाढ़ी पर हाथ फेर रहे थे। लेखक के इस निवेदन से वह और भी द्रवित हो उठे । एक निश्वास छोड़ी और कहने लगे, "क्या कहूँ दोस्त ! कि तुम, जो महा ज्ञानी, महान् शक्तिशाली, और अनंत रत्नगर्भा वसुन्धरा के विधाता हो ! — तुम, जो कि अपनी इच्छा के अनुसार जीवनी-तत्त्व के अणु-परमाणुओं का उपयोग करने की ईश्वरीय शक्ति सिद्ध कर चुके हो ! —ऐसे महाज्ञानी, महा शक्तिशाली मानव, तुम क्यों अपनी बुद्धि, ज्ञान, शक्ति और [illegible] का दुरुपयोग करने में ही अधिकतर मस्त रहते हो, व्यस्त रहते हो ? तुम्हें धन, आत्मसम्मान और ख्याति कमाने की तो इतनी अधिक चिन्ता और उतावली रहती है, और, बुद्धि तथा सत्य के लिये इतनी अवज्ञा, इतनी लापरवाही ?"

महर्षि सुक़रात यह कह कर पुनः ब्रह्मरूप हो गये । अलोप हो गये ।

हिन्दू, सिख, मुसलमान जाँनिसार क़ौमपरस्त अपने-अपने नारे लगाकर आपस में जूझ पड़े । सुक़रात के अलोप हो जाने से उनके धर्म-युद्ध और जिहाद में कोई फ़र्क़ नहीं आया । सुक़रात तो महज़ एक बहाना थे । लोगों को लड़ना था—मरना था ।

धर्म युद्ध और जिहाद का रूप धीरे-धीरे उग्र और भयङ्कर होने लगा ।

बेचारा मानवतावादी लेखक चारों ओर गोला-बारूद से घिरा हुआ चिल्ला रहा था, "मानवता ! मानवता ! मानवता !" इतनी निर्मम हत्यायें देखकर उसका मन जीवन के प्रति घृणा से भर उठा । जीने से उसे अनिच्छा हो गयी । और, गोलियों की बौछारों के बीच में लेखक की इच्छा पूरी हुई । अंतिम साँस तक उसने अपना मानवता मंत्र न छोड़ा ।

उस समय मानवता दानवता बनकर पृथ्वी पर अपना विकराल रूप धारण कर रही थी।

× × ×

आकाश मार्ग से ब्रह्मलोक जाते हुए महर्षि सुक़रात ने बादलों से झाँक कर नीचे देखा: अनगिनत लाशें। ख़ून से डूबी हुई धरती। कटे सिर, हाथ-पैर; लाशें छटपटा रही हैं। घायल चीख़ रहे हैं चिल्ला रहे हैं। तोपों और बन्दूक़ों की आवाज़ से आलम गूंज रहा है।

आदमी मर रहा है।

रच-रच कर चुनवाई गयी अटारियाँ, महल-दुमहले, हवेलियाँ मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, पुस्तकालय, स्कूल, कॉलेज, फ़ैक्ट्रियाँ, कच्ची-पक्की झोंपड़ियाँ आग की धू-धू लपटों को उगल-उगल कर उन्हें आसमान की तरफ़ बढ़ा रही हैं।

आदमी का घर जल रहा है।

आदमी की विद्या जल रही है।

आदमी का कर्मक्षेत्र जल रहा है।

पुरुषों के पाशविक अत्याचारों से, पुरुषों के हिंसक दिमाग़ की असंख्य अमानुषिक सूझों से, लाख-लाख तरीक़े से सताई गई; खेली, तोड़ी-मरोड़ी गई निरीह नारी अपना सब कुछ गँवा कर, पशुता का यह ताण्डव देख कर, हिन्दू, सिख, मुसलमान—इन्सान की माँ—नारी—आज क्रीतदासी की तरह निरादृत है, लाचार है।

इन्सान की माँ मर रही है।

इन्सान की सहरमणी, पशुता और अप्राकृतिक कठोरता से त्रस्त होकर रस और भावों से जड़ हो रही है।

समाज की मर्यादा पुरुष की अर्द्धांगी नारी के साथ ही टूट रही है।

छोटे-छोटे दुधमुंहे बच्चे, जिनकी किलकारियों से कल तक इन्सान का घर भर रहा था, जिन्हें देख कर कल तक पुरुष का थका हारा मन हरा-भरा हो जाता था, कल तक बच्चों से जो पृथ्वी स्वर्ग थी, वही आज हैवानियत का अजायबघर बन गई है। इन बच्चों के टुकड़े-टुकड़े उड़ाते हुए पुरुष को तनिक भी ममता नहीं आती। लाखों अबोध बच्चों की लाशें झूठे अभिमान और झूठे अधिकारों की बलिवेदी पर कटी हुई पड़ी हैं।

आदमी की औलाद मर रही है।

आदमी सदा के लिये मर रहा है।

ब्रह्मलोक जाते हुए महर्षि सोचने लगे, "क्या आदमी सचमुच मर जायेगा ?"

सुक़रात ने फिर झाँक कर दुनिया की तरफ देखा : अब भी दुनिया इन्सानियत के हामियों से भरी है। अभी बच्चों की किलकारियाँ कहीं से सुनाई पड़ जाती हैं। अभी समझ और मानवता का पूर्णरूप से बहिष्कार नहीं हुआ। एक ओर जहाँ दंगे है, वहाँ दूसरी ओर उन दंगों को रोकने वाले शांति दूत भी हैं। मनुष्य की मनुष्यता अभी भी अपनी अंतिम विजय में विश्वास रखती है। मनुष्य क्रमशः जीवन का स्वामी बनने जा रहा है। ऐसा मनुष्य भला कभी मर सकता है ?

आशा के विपरीत इस बार महर्षि का ब्रह्म बोल उठा :

हरगिज़ नहीं !

———

जय-पराजय

पैरों तले, जमीन पर बैठ कर कुछ अखबारी फोटोग्राफर नीचे ऐंगिल से तस्वीर खींचने के लिये तैयार थे। कैमरा के 'व्यू फाइंडर' में एक दुबले-पतले, सफेद-पोश युवा की आकृति जेल के ऊंचे फाटक को ढकती हुई छा गयी थी। नारे गूंज उठे। बैंड बजने लगे।

अगस्त क्रांति का नेता, शहर का हीरो शिवनाथ आज साढ़े तीन बरसों के बाद जेल से मुक्त हुआ है।

स्वराज्य का जमाना, प्रांत में कांग्रेस मंत्रिमण्डल की फिर से स्थापना हो चुकी थी। तिरंगे झण्डे की शान और धाक जम चुकी थी। अगस्त क्रांति के वीरों का आदर करने के लिये जनता में अभूतपूर्व उमंग थी, अपार जोश था। और शिवनाथ तो उन शूरों का सरदार था। तीन दिनों तक उसने इस नगर में अंग्रेजी शासन का नाम उठा दिया था। रेल, डाक, तार, पुलिस, कोतवाली, अदालत सब पर नगर की प्रजा का अधिकार हो गया था। बड़े बड़े जन्ट, कमिश्नर जान से मारे गये, जलाए गए। सरकारी कोठियों से यूनियन जैक उतार कर पैरों तले कुचले गये, जलाये गए, जेल के सारे कैदियों को आजाद कर दिया गया। नाके नाके पर सरकारी पुलिस और फौजी लारियों को रोकने के लिये जबर्दस्त इन्तजाम किया गया था। उन रास्तों पर बड़ी बड़ी और गहरी खाइयाँ खोदकर उन पर हल्की घास-फूस की टट्टियाँ बिछा कर ऊपर से मिट्टी डाल दी गयी, ताकि पता न लगे। फौजी लारियाँ आईं और अनजान में उन खाइयों में जा गिरीं। ऊपर से पत्थर और तीर बरसाए गये। दूर-दूर तक रेल की पटरियाँ उखाड़ डाली गयीं। टेलीफोन, तार के खम्भे उखाड़ फेंके गए और यह सब इस नगर के शिवनाथ की ही प्रेरणा से हुआ था। शिवनाथ ने हजारों दिलों

में आजादी की न बुझनेवाली आग को प्रचण्ड कर दिया था। लोग उसके इशारे पर जीने मरने को तत्पर थे। घर-घर में बच्चों–बूढ़ों की जबान पर शिवनाथ का ही नाम था, उसके जोशीले कारनामों के गीत गाये जाते थे।

शहर पर अंग्रेजों के फिर से कब्जा कर लेने के बाद भी शिवनाथ आसानी से उनके हाथ न आया। चार महीने बाद वह धोखे से पकड़ा जा सका था। जेल में उसे कैसी-कैसी अमानुषिक यातनाएँ भोगनी पड़ीं, इसकी बहुत सी झूठी और सच्ची कहानियाँ बढ़ाव-चढ़ाव के साथ जनता में प्रचलित होकर जनता के हृदय में उसके प्रति दुगुनी, चौगुनी श्रद्धा प्रतिष्ठित कर चुकी थीं।······

जेल के बाहर कदम रखते ही मन की ताजगी आत्मा पर छागयी। इतने स्वतन्त्र आदमियों के समूह को उसने एक अरसे के बाद देखा था। इन लोगों की तरह आज वह भी स्वतन्त्र था। शिवनाथ का मन मगन हो रहा था। वह खुशी और राहत का एक उन्मादी झोंका था, जिसे बर्दाश्त करना एक पल के लिये उसे नामुमकिन सा लगा।

जय घोष हुआ—'महात्मा गांधी की जय' 'जवाहरलाल नेहरू की जय', 'शिवनाथ वर्मा की जय।' शिवनाथ आत्मविभोर हो गया। जेल की भीषण यातनाओं को सहने वाली कठोरता द्रवित होकर आनन्दाश्रु बन आंखों में छलछला उठी। असंख्य अपरिचितों के आत्मीय प्रेम की भावना में डूबकर वह अपनी सुध बुध भूल गया। उस मुहल्ले के धनी मानी, नगर कांग्रेस कमेटी के सभापति बाबू रहस बिहारी टण्डन और शहर के सम्मानित नेता सौम्यमूर्ति सेठ बंशीधरजी ने आगे बढ़ कर उसे फूलों के हार पहिनाये और गले लग गए। शिवनाथ का दिल उमड़ पड़ा। फिर उसने सेठजी से पूछा—"असलम नहीं आया?"

जवाब बाबू रहसबिहरी ने दिया, व्यंग्य से मुस्कराकर और आंखें

मटकाकर—"हिः हिः आपके मित्रवर, अब अपने असली रूप में आ गये हैं भई साब, बगला भगती आखिर कै दिन चल सकती है ?"

"क्या मतलब ?" शिवनाथ ने साश्चर्य पूछा।"

सेठजी बाबूजी के उत्तर से पहिले ही शान्त भाव से कहने लगे—"असलम आदमी हीरा है। हम से सैद्धांतिक विरोध के कारण अब वह लीग का पक्षपाती हो गया है, बस !"

बाबूजी व्यंग्य से मुस्करा दिये। शिवनाथ गम्भीर हो गया। उसके पैर रुक गए।

जयकार और नारे बढ़ते गये। लोगों की भीड़ ने आगे बढ़ कर उसे हारों से लाद दिया। अपने चारों ओर जनता से घिरा हुआ शिवनाथ कृतज्ञता-ज्ञापन में अपने को असमर्थ पाकर विनीत हो उठा।

उसे संकोच हो रहा था। यह संकोच उसके लिए एक दम अपरिचित, एक दम नया था। शिवनाथ सदैव एक सिपाही की तरह रहा है। उसने अपने को हरदम आगे बढ़ते हुये, कुछ करते हुए ही पाया है। लेकिन आज इस आनन्द, स्वागत और प्रेम के सैलाब ने उसके मन की सीमाओं को भर कर उसे बांध दिया है। उसे इसमें से कहीं गति नहीं मिल रही है। उसे संकोच हो रहा है। वह विनम्र हो गया है।

स्वयंसेवक भीड में से उसके लिए राह कर रहे हैं। अनेक अवसरों पर बड़े-बड़े नेताओं के लिए उसने भी इसी तरह लोगों के हुजूम में राह निकाली थी।

चार घोड़ों की फिटन उसके लिए खड़ी है। जुलूस निकाला जायगा और सेठजी सदा की भांति नेता के पास बगल में विराजेंगे।

जयकार, स्वागत, फूलहार से लेकर इस फिटन तक सारे चिर परिचित ठाट-बाट को आज अपने लिए देखकर उसे बड़ा अजीब सा

लग रहा है। अपने लिए इन चीजों की उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। अगस्त–क्रांति के दिनों में जब कभी उसे अपनी प्रशंसा के गीत सुनाई पड़ जाते थे तब वह एक क्षण के लिए आत्मगौरव और प्रसन्नता से फूल उठता था—पर केवल एक क्षण के ही लिए। इससे अधिक उन दिनों उसके पास अवकाश ही नहीं था। उन दिनों वह आत्मप्रशंसा और आडम्बर से बहुत दूर बहुत काम में फंसा हुआ था। लेकिन आज परिस्थिति दूसरी थी। जेलर ने जब उससे बाहर की भीड़ और उसके स्वागत के आयोजन का हाल बताया तो उसे घमण्ड हुआ था। वह घमण्ड उस जेलर पर, उस जेल पर, शिवनाथ की जीत बन कर छा रहा था। जेलर जानता था वह एक ऐसे दल के नेता से बात कर रहा है जिसके हाथ में प्रांत के शासन की बागडोर है। शिवनाथ भी उसके इस बदले रुख को पहचानता था और मनुष्य का यही स्वभाव है, यह सोच कर वह मुस्कराकर उठा था। लेकिन इस समय तक वह जीत, वह घमण्ड और खुशी अपनी पूर्णता पर पहुंच कर स्थिर हो चुकी थी। अपने ही नगर में, परिचितों और सहयोगियों के समाज में यह गौरवशाली स्थान पाकर उसे झिझक हो रही थी। अपने मन को ठीक तरीके से व्यक्त करने के लिए उसे शब्द न मिले। सेठजी की ओर दयनीय भाव से देखकर केवल इतना ही कहा—"मेरा तमाशा क्यों बना रहे हैं ?"

सेठजी हँसे और बोले—"काम ही ऐसा करते हो कि जग देखे।"

बाबू रहसबिहारी टण्डन के पास से रंगे हुए छोटे-छोटे घिसे दांत चमक उठे—'हें हें हें' कर के हँस दिए। फिर बाबूजी ने फिटन का दरवाजा खोल दिया। जय घोष से आसमान गूंजा और शिवनाथ ने गाड़ी में खड़े होकर सब को प्रणाम किया।

स्वंयसेवकों ने भीड़ को जुलूस के रूप में संगठित किया। युवकों की नारे लगाती टोली और नागरिक दल फिटन को घेरे आगे बढ़ा।

शहर की प्रमुख सड़कों और बाजारों से जुलूस गुजरा। शिवनाथ सूनेपन और कठोर यातना के चार बरस गुजारने के बाद आज फिर अपने को परिचित और प्रिय वातावरण में पाकर मगन था, लेकिन वह यह भी अनुभव कर रहा था कि उसकी प्रसन्नता जबरदस्ती गम्भीरता की बनावट में ढंकी जाती थी।

जुलूस दूसरी सड़क पर मुड़ा। यह शिवनाथ की चिर परिचित और अपने साइन बोर्ड के मुताबिक 'जगत' प्रसिद्ध पान शरबतकी दूकान है जिसका स्वामी मंगल पहलवान है।

फ़िटन घूमी। मंगल पहलवान दिखाई पड़ा। भीड़ को चीर आत्मिक आल्हाद से भर वह फिटन के पावदान पर आ गया और आरती उतारने लगा। बोला—"पहलवान के भाग को आज न टोकना भैय्याजी। झगड़ा हो जायगा।" उसकी आंखें जोश और खुशी से छलछला रहीं थीं।

पहलवान इस समय तीन लोक-चौदह भुवन की खातिरदारी करने के जोश में था—"हार देनाजी। तश्तरी बढ़ा वे। सब बल्लमटेरों को भी शरबत पिलानाजी। कोचवान को भी देना लपक के। देर–फेर की दुहाई मत दीजिये सेठजी। गुलाम की इत्ती अरदास सुन्नी ही पड़ेगी। आज चार-चार बरिस से इसी दिन की लौ लगाये बैठा था। जिनगानी में पहली बार पहलवान की दुकान पर बेंड बाजा बजा है। और आज तो जब पांच मिनट तक राष्ट्री कीर्तन होय लेगा, तब भैय्याजी की बारात आगे बढ़ेगी। नई, आज में एक नई सुनूंगा। हां, चालू हो जाना जी मेरे भा्‌ग्य।

"ॐ जय कस्तूरी जय गांधी की, जै जै जै जै सीताराम।
औ जै कमला जै वीर जवाहर, जै जै जै जै राधेश्याम॥"

अपने आगे पहलवान ने किसी की भी लाट गवर्नरी न चलने दी। जो बोलना शुरू किया, तो राष्ट्रीय कीर्तन पर आकर ही टूटा। फिटन

के पावदान पर खड़ा ललकारता रहा और सामने हलवाई की दूकान के पास मजीरे-करताल और तालियाँ बजाते हुये आठ दस लोग झूम-झूम कर दोहराते चलते थे।

राष्ट्रीय कीर्तन मंगल पहलवान के दिमाग की उपज थी। पहलवान का राष्ट्रीय कीर्तन अब तक शहर में काफी प्रचलित हो चुका था। यह उसका नया आविष्कार था।

यह उत्साह, यह जीवन····! चारों ओर तिरंगी झण्डियों की सजावट, तिरंगे झण्डों की छटा, यह जोश से भरा हुआ अपार जनसमूह!

शिवनाथ देखता रहा। उसके चारों ओर का वातावरण दिल को दूना करने वाला था। चूंकि इस मजमें पर उसका अपनापन छा रहा था, इसलिये सवाल और विचारधारा खो गयी।

परिचित, अपरिचित बहुत से ऐसे चेहरे जिनसे उसका दूर का पुराना परिचय था—उन्हें देख कर शिवनाथ की आंखें तृप्त हो रही थीं। जुलूस आगे बढ़ रहा था।

एक उंची और चौड़ी दीवार पर 'प्लेयर्स प्लीज़' सिगरेट का विज्ञापन रंगा हुआ है। विज्ञापन के नीचे उसकी लम्बान चौड़ान का हिसाब और गुणानाथ पेंटर का नाम इतनी दूर से अस्पष्ट होने पर भी शिवनाथ ने संस्कारवश पढ़ लिया। गुणानाथ पेंटर का नाम तो चट से ध्यान में आ गया। मगर हिसाब के 'ईंटू' और 'बटा' के साथ कुछ गिनती है—सो वह तो कभी ध्यान में नहीं रही थी। इस समय भी उसके ध्यान में न आ सकी। इस गली में गुज़रना उसके रोजमर्रह में शामिल था। अन्दर बायें हाथ की दो गलियाँ घूम कर असलम का मकान है, शिवनाथ को असलम की याद आ गयी।

दिल उड़कर उसके दरवाज़े पर जा पहुँचा। दाहिने हाथ पर एक

छोटा सा मैदान, उसमें नीम का पेड़, दीवाल पर म्युनिसिपैलिटी की लालटेन, काठ की नक्काशीदार बड़ी मोटी चौखट और दरवाजे, उस बड़े भारी मकान की खिली हुई लाखौरी ईंटें, हँसता हुआ असलम— सब एकबारगी ही तस्वीर बनकर आंखों के आगे आगये।

फौरन ही अपना घर, अपनी पत्नी, अपना बच्चा–सबका ध्यान आने लगा। बच्चे को तो उसने अभी तक आँखों से भी नहीं देखा। जब वह फरार हुआ था, उसकी पत्नी गर्भवती थी।

ख्याल बड़ा ही प्यारा और बेताब सपना बना। वह इन सब से फिर मिल सकेगा। वह अपने बच्चे को देख सकेगा। पता नहीं लड़का है या लड़की? पत्र, भेंट, दुनिया की खैर खबर से बंचित फरार और जेल-जीवन के पिछले चार बरस पहाड़–सी व्यथा बन कर उसके दिल को हिलाने लगे। बेकली और बेताबी यहां तक बढ़ी कि छूटकर घर भागने को जी चाहा। यह जुलूस, यह नौ दिन चले अढ़ाई कोस वाला तमाशा उसे जेल की तरह ही उबा देने वाला लगा। हाथों में दर्द महसूस किया–जोड़ते जोड़ते थक गये थे। गर्दन पर बड़ा बोझ लगा। उसने बचे खुचे हार भी उतार कर पायताने पर डाल दिये। नीचे पैरों पर हार का अम्बार लद गया था। शिवनाथ सीधा हो कर बैठ गया। हाथ मशीन की तरह जनता-जनार्दन को प्रणाम कर रहे थे। शिवनाथ कर्जा सा पाट रहा था, ऊब रहा था।

बाबू रहस बिहारी की आँखों में यह देख कर तनतनी भर रही थी—"बेटा जवाहरलाल बने हुये हैं, बगला भगत कहीं का।"

सेठ बंशीधर अपने भूधराकार पेट पर दोनों हाथ बांधे, पीठ टिकाये, एक मुद्रा में गम्भीर होकर बैठे थे।

जुलूस खास बाजार से गुज़रने लगा। बड़ी सजावट है। ऊपर से फूल और हार बरस रहे हैं। दोनों तरफ की दुकानों से फूल लुटाये जा

रहे हैं। कदम-कदम पर दुकानदारों की टोलियाँ हार और इत्र-पान की भरमार कर रही हैं। इन्कलाब का नारा ज़र्रे-ज़र्रे में समा रहा है।

सभा हुई। नगर की ओर से हर विशिष्ट व्यक्ति का स्वागत तो राजनीतिक स्वागतों की परम्परा से ही सेठजी करते आये हैं। मगर इस स्वागत में श्रद्धा का बोझ नहीं, प्यार था। सभा के हर एक व्यक्ति के मन में इसी प्यार का दरिया उमड़ रहा था। शिवनाथ के अपने ही नगर में, नगर निवासी उसका स्वागत कर रहे थे। नगर को अपने शिवनाथ पर नाज था।

सामाजिक स्वाभिमान के दिन बहुरे थे। ४२ सन् के बाद नेताओं की रिहाई तक देश का स्वाभिमान विदेशी शासनतन्त्र की चक्की में दिन रात पिसता रहा। आजाद हिन्द फ़ौज के ऐतिहासिक मुकदमे की विजय भारतीय जनता के लौटे हुये स्वाभिमान की विजय थी। जहाजी बेड़े का ग़दर उसका जयघोष था। प्रांतीय मन्त्रि-मण्डलों का पुनरागमन इस बार जीत और अधिकार के साथ हुआ था। राष्ट्र और राष्ट्रीयता के अभिमान ने जनता को अति विश्वास की भावना और उत्तेजना दी थी।

शिवनाथ ने अपने भाषण में कहा—"अपनी और देश की इस नई आज़ादी का अनुभव जो मुझे इन दो घण्टों में हुआ है उसे मैं अचानक ही न भुला सकूंगा। अच्छे हो जाने के बाद बीमार की सम्हाल और परहेज़ और भी सख्त हो जाता है। हमें यह एक सेकण्ड के लिये भी नहीं भूलना चाहिये कि हमारा देश गुलामी की एक बड़ी ही लम्बी बीमारी के बाद उठ रहा है, ज़रा सी गफ़लत से हम फिर पछाड़ खा जायंगे—और इस बार तो मुर्दा ही हो जांयगे। आजादी की मंजिल अब भी चांद, सितारों की तरह कोसों दूर है। उसके लिये हमें पूरी ताकत और दिल के साथ तैयार होना है।

"मैं अपने चारों ओर देख रहा हूं। हमारे बहुत से ऐसे देशभाई

भी आज देश भक्त हो गये हैं, जो कभी देश और आजादी के नाम से दूर भागते थे। एक पहलू से गौर करते हुए मुझे इस बात की खुशी भी है। इससे इन्सान में नई क़ूबत पैदा होती है, आत्म विश्वास आता है और इसलिये यह और भी जरूरी है कि हिन्दुस्तान आजादी की कीमत को समझे, उसे पहचाने। कीमत खुलने पर ही आदमी अपनी आजादी को अपनी जान से ज्यादा समझकर उसकी रक्षा कर सकेगा। आजादी के बिना जीने से लाख दरजे बेहतर है आतमघात करके मर जाना। याद रखिये, गुलाम को धरती पर जीने का कोई भी अधिकार नहीं। आजादी क्रांति चाहती है। अपनी हजारों बरसों की गुलामी से आजाद होकर हमारा देश सारी दुनिया को सच्ची आजादी दिलायेगा। दुनिया के गुलाम, गुलामी के इस महादेश के आजाद होने की बाट देख रहे हैं। क्रांति के लिये तैयार हो जाओ। भारतमाता के आंगन में दुनिया एक नई क्रान्ति देखेगी। इन्क़लाब जिन्दाबाद। ६ अगस्त जिन्दाबाद।"

जिन्दगी हरसू आबाद थी। जोशीले शब्दों और नारों से लोगों की क्रांति की प्यास बुझी। जुलूस की थकान को इस सभा के जोश ने शिवनाथ के दिल से उतार दिया था। वह ताजा था, जोश में था। सन् ४२ के जोश से आज की कड़ी जोड़ कर वह कुछ देर के लिये अपने जेल के बीते बरसों को भुला चुका था।

मीटिंग खत्म हुई। बाप की गोद में तीन चार बरस का लड़का उसे हार पहनाने आया। शिवनाथ को फौरन ही अपने बच्चे का ध्यान हो आया! उसने बड़े जोश के साथ उस बच्चे का मुंह चूम लिया। और अपने दो तीन हार उसे पहना दिये।

अपने मोहल्ले में आया। यहाँ उसके स्वागत का नया इन्तजाम था। जिस पर नगर न्यौछावर हो रहा है उस पर खास उसका मोहल्ला ही क्यों न बलि-बलि जाये? उसके नाम का फाटक, उसके स्वर्गीय पिता के नाम का फाटक और झंडियां—झंडे वग़ैरह लगे थे। मोहल्ले के

ताऊ, चाचा, भैया, बाबा, दादियां चाचियाँ, भाभियाँ, बहनें सभी तो शिवनाथ के सम्मान में साझा बटाना चाहें। बड़ाई और अपनेपन की भरमार से वह गले-गले तक भर गया। वह जल्द से जल्द घर पहुंचना चाहता था; लेकिन अपनों का यह अपार स्नेह भी तो नहीं ठुकराया जा सकता ?

आख़िरकार--

घर की गली पर पहुँचता है। दोनों ओर के खंडहर वैसे ही। सामने दरवाज़ा--सूना ? वह किशोरी को बच्चे के साथ वहां देखने की आशा रखता था। उसकी उमंगों पर गहरा तुषारपात हुआ। कुछ झुंझलाहट भी आई। सारा आलम तो उसका स्वागत करने को धाया और उसकी पत्नी दरवाजे पर तक आकर न खड़ी हुई।

बाबू रहसबिहारी और दूसरे लोगों से विदा ली। उसे बार बार घर के दरवाजे की तरफ देखकर बाबू रासबिहारी हंसकर लोगों से बोले—"अरे बेचारे को घर जाने दो भाई ! बेचारा चार बरस से छूटा हुआ है।"

बाबूजी इसी मोहल्ले के क़दीमी वाशिन्दे हैं। इस समय टाउन कांग्रेस कमेटी के प्रधान भी हो गये हैं। दवाओं की दुकान है, जिसने लड़ाई के जमाने में इनकी निर्धनता के तपेदिक को दूर कर बदन पर थोड़ी 'ईश्वर की दया' भी चढ़ा दी है। कीर्तन खूब करते हैं। मोहल्ले-वालों में रोब है। वह चले, तो सब चले। शिवनाथ ने "नमस्ते" कहा।

बाबू जी बोले—"अरे नमस्ते क्या ? जयहिन्द कहा करो, जय हिन्द। कैसे नेता हो तुम ?"

घर के दरवाजे खुले हैं। गले और दोनों हाथों पर हार लादे हुये शिवनाथ ने घर में प्रवेश किया।

"किशोरी !"

अरसे बाद शिवनाथ ने यह आवाज लगाई थी। जवाब न मिला।

सामने दालान में बच्चा लेटा है। किशोरी बच्चे की ओर मुंह किये बैठी है। उसने घूम कर देखा भी नहीं। शिवनाथ अचरज और घबड़ाहट के साथ पास जाता है। बच्चे की आंखे बन्द है। घर्राटा चल रहा है। किशोरी कंकाल मात्र रह गई है।

शिवनाथ का अंग-अंग–मन तक जड़ हो गया। किशोरी ने एक बार अपनी फटी–फटी सी पथराई आंखों से स्वामी को देखा, फिर बच्चे के मुख पर नजर गड़ा दी––पीला सूखा हुआ चेहरा, गले में कफ की गड़गड़ाहट, धीमी टूटती हुई सांसें—

शिवनाथ देख रहा है। उसका दिल और दिमाग दोनों ही उस समय चेतनाशून्य थे। चार बरस जिसकी कल्पना में तड़पा, उसी बच्चे को वह पहली बार देख रहा है। बच्चे की सांसें जा रही हैं—धीमी हुईं––ठंडी हो गईं।

पत्नी स्तब्ध ! पति स्तब्ध !

फूलों से लदे हुये अपने गौरवशाली स्वामी की ओर किशोरी देखती है। कहती है—"नन्हें का मुंह देख लो ! पहली बार देख रहे हो !"

बात ने दिल काट कर रख दिया। शिवनाथ किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा खड़ा है। वह कुछ सोच नहीं पाता, कुछ समझ नहीं पाता। आजादी की खुशी और बच्चे की मौत एक साथ आई थी। यकायक कुछ न सूझा तो पूछा—"क्या बीमारी हुई थी ?"

एकटक स्वामी की आंखों से आंखें मिलाईं, भावशून्य स्वर में धीरे से कहा––"गरीबी।"

शिवनाथ की नजरें झुक गईं। किशोरी ने बच्चे के मुंह की तरफ देखा। बाल की एक लट बच्चे के मुंह पर उड़ आई थी। किशोरी ने उसे हटाने के लिये बच्चे के मुंह पर हाथ रक्खा। हाथ वहीं का वहीं रुक गया। किशोरी जोर से चीख मार कर अपने बच्चे की लाश से लिपट गई—"नन्हा ....।"

(१९४६)

बेबी की प्रेम कहानी

विवाह के दो वर्ष बाद ही मेरी पत्नी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। पिता की पदवी को पहले-पहल विभूषित करते समय, तब मेरे भावुक हृदय में वात्सल्य लोटा-लोटा फिरता था। मैंने उसके मस्तक पर हाथ फेरकर बड़े प्रेम से आशीर्वाद दिया—"बेटा ! तुम विश्व-वन्द्य साहित्यिक हो।" तब उस होनेवाले महान् साहित्यिक की अम्मा ने शय्या पर पड़े ही पड़े अपने पूज्य पति की कोमल भावनाओं को ठुकरा दिया। उसने कहा—"मैं नहीं चाहती कि मेरा बेटा साहित्यिक बनकर तुम्हारी और अन्य लेखकों की तरह अवारागर्दी में ही अपना सारा जीवन बिता दे। वह तो जज होगा जज।"

लाहौर कांग्रेस के अवसर पर, सुनता हूँ, जब राष्ट्रपति जवाहर लाल नेहरू का शानदार जुलूस निकला था, तब एक दूकान पर खड़े होकर यह दृश्य देखते-देखते ही पण्डित मोतीलाल नेहरू का कलेजा दस हाथ का हो गया था।......यह तो आम क़ायदा ही है कि पिता अपने पुत्र को अपने से अधिक यशस्वी देखने में ही सुख मानता है। परन्तु उस समय उसे यह सब कौन समझता ? ख़ैर।

उस बात को भी आज तीन वर्ष हो गये। भगवान की कृपा से मेरा आशीर्वादरूपी बीज ऊसर जमीन में नहीं पड़ा—यह मुझे अब विश्वास हो चला है। सूरत और सीरत दोनो ही में 'बेबी' मेरा 'एब्रिज्ड-एडिशन' है। तकिये पर सिर रखकर, टाँगे फैलाकर, आराम से लेटा हुआ मुंह में पेन्सिल, क़लम, दियासलाई की सींक आदि कुछ न कुछ दबाकर बीच-बीच में क़श खींचकर धुआँ छोड़ता हुआ, बँगला का सूचीपत्र खूब तन्मय होकर पढ़ता है। और जब कभी, ऐसे समय मेरी उसकी निगाहें चार हो जाती हैं, वह मुस्कराकर कहता है—

"बाबूजी ! छिगलत।" मेरा भावुक हृदय तब बाग-बाग हो जाता है; परन्तु उसकी माँ को यह सब अच्छा नहीं लगता। जज होने का-सा तो कोई काम भी वह नहीं करता—नेकर, मोजा और जूता पहनाने पर रोने लगता है, और कुरसी पर बैठते समय मख़मली गद्दी उठाकर ज़मीन पर फेंक देता है।

गर्मी की झुलसाती हुई संध्या के समय मैं बैठा हुआ 'देवदास' पढ़ रहा था। इतने ही में बेबी ने आकर प्रसन्नता से किलकारी मारते हुए मेरी 'स्टडी' में बाधा देकर कहा—"बाबूजी, छोती मुन्नी आई गई।"

शरत् बाबू का देवदास उस समय चन्द्रमणि को शराब के झोंक में गालियां सुना रहा था। मानव-स्वभाव के अनुकूल ही मुझे उसमें बड़ा मज़ा मिल रहा था। मैंने सोचा, यदि इस समय केवल 'हूँ' या 'अच्छा' कह देने से काम चल जाय तो बड़ा ही अच्छा हो; परन्तु बेबी-हठ के सामने ऐसा होना ज़रा असम्भव सा ही रहता है। घर में बड़े रुआब के साथ रहता हूँ, यहाँ तक कि माँ भी पढ़ने लिखने के समय मुझसे पान के लिए पूछ लेने के सिवा और कोई बात नहीं कहतीं। परन्तु बेबी साहब का 'डायर-डम' मुझ पर भी आतंक जमाये हुए है। मेरा मुँह अपनी ओर घुमा लेने की सतत चेष्टा करते हुए उसने फिर कहा—"बाबूजी, देको ! देको !! छोती मुनी आई गई।"

उसकी इच्छा के सामने मुझे अपना मस्तक झुका लेना पड़ा। रद्दी अख़बार के एक टुकड़े का निशान पढ़ी हुई जगह पर लगाकर मैंने पुस्तक बन्द कर दी। बेबी ने फिर उल्लसित स्वर में कहा—"छोती मुन्नी आई गई।" सोचने लगा, समझ आने पर मेरा बेबी छोटी मुन्नी के आगमान की सूचना मुझे न देकर उससे ही पूछा करेगा—"तो तुम आ गई।" परन्तु उस समय तो मैंने ही उससे कहा—"छोटी मुन्नी आ गई ?... अच्छा जाओ, उसके साथ खेलो तो बेटा।" मिठास और नम्रता का पुट देने के लिये मैंने उसे सप्रेम पुचकार भी दिया।

लेकिन बेबी न माना। मेरा हाथ पकड़कर वह मुझसे कहने लगा—"उथो।"

उठना ही पड़ा।

छोटी मुन्नी मेरे एक मित्र की आठ-दस महीने की लड़की का नाम है। न-जाने कितने ही समवयस्क लड़के-लड़कियों से अपने खिलौने के पिछे 'महाभारत' हो चुकने के उपरान्त बेबी ने अपनी सारी निधि छोटी मुन्नी के हाथ में सौप दी है। बेबी के शरीर पर लग गई धूल को दो-चार हाथ झाड़ देने का भी उसको अधिकार है, वह उसके मस्तक को अपने दोनों हाथों से दबाकर कपोलों पर चुम्बन अंकित कर कहता है—"छोती मुन्नी।"

दूसरे कमरे में छोटी मुन्नी दोनों हाथों से बेबी की गृहस्थी लुटाकर कुछ बड़बड़ा रही थी।

मेरी उँगली पकड़कर खींचते हुए बेबी ने मुस्कराकर कहा—"बाबूजी देखो।"

चुटकी बजाते हुए, लय के साथ मैंने पुकारा—"बेटी! रानी!!"

गरदन घुमाकर एकबार छोटी मुन्नी ने मेरी ओर देखा और मुस्कराकर फिर अपने कार्य में व्यस्त हो गई। मैं उसे गोदी में उठाने वाला ही था कि बेबी ने मुझसे कहा—"छोती मुन्नी गोदी ले लो।"

पुलक-हास्य पर गम्भीरता का जालीदार आवरण उढ़ाकर मैंने कहा—"नहीं लेता। क्यों लूं छोटी मुन्नी को गोदी में? बड़े आये साहब वहाँ से छोती मुन्नी गोदी ले लो।"

इस फटकार से किंचित अप्रतिभ होकर भी स्वाभिमानी बेबी हठ

करता ही रहा। फिर भी जब मैंने उसे गोद में न उठाया तो दादी के पास जाकर शिकायत की—"भाजी, देको।"

दादी ने प्रेम से उसके गालों पर हाथ फेरकर कहा—"क्या हुआ बेटा ?"

"ऊँ··ऊँ··ऊँ··बाबूजी गोदी नई लेता।"

बेबी की दादी ने उसे गोद में बिठाकर मुझे फटकारा—"क्यों रे ? नहीं मानता ?"

बेबी ने गवाही दी—"नई मानता।"

"आ तो सही, तेरे बाबूजी को पीटें। धत् रे बेबी के बाबूजी।" माजी ने ज़ोर से हाथ उठाकर मेरी पीठ पर धीरे से दो धमाके रख दिये।

बेबी हँस पड़ा।

छोटी मुन्नी को गोद में उठाकर अपने सिर से उसके पेट को गुद-गुदाते हुए माजी ने कहा—"अरी मेरी छोटी मुन्नी ? मेरी कलेजे की कोर ! मेरी बिटिया-रानी।" तब छोटी मुन्नी भी हँस रही थी, और बेबी भी। सहसा छोटी मुन्नी मचलकर गोदी से उतर पड़ी, और घुटनों के बल खिसक कर ज़मीन में पड़ा हुआ बेबी का बँगलावाला सूची-पत्र उठा लिया। अपनी चीज़ों में बेबी को उस सूचीपत्र से ही बहुत अधिक स्नेह है। छोटी मुन्नी की यह अनधिकार चेष्टा बेबी को शायद कुछ अखरी। उसने उससे पुस्तक को ले लेना चाहा। हाथ से किताब के एक सिरे को पकड़कर उसने अपनी ओर खींचा। अपने दोनों छोटे-छोटे हाथों की सम्पूर्ण शक्ति के साथ पुस्तक को पकड़े हुए छोटी मुन्नी 'आँ-बाँ' करती हुई उसके साथ-साथ खिंची चली आ रही थी। बेबी ने ढील दी, और फिर विकलतापूर्वक, (संस्कारवश) आधी गुजराती और आधी हिन्दी में कहने लगा—"माली कीताप दे। आपी दे ! !"

छोटी मुन्नी के हृदय पर इसका कितना असर पड़ा, यह कहना कठिन है। परन्तु पुस्तक न छोड़ी। बेबी ने बन्दर द्वारा किताब को झपट ले जाने का भय दिखाया, पितामही के आदेशानुसार प्यार किया, चचाओं की सलाह से हाथ जोड़कर विनती की; परन्तु उसने पुस्तक न दी, न दी।

अबला पर अधिक अत्याचार न करना चाहिए अथवा स्त्रीहट के सामने किसी की दाल नहीं गलती—सम्भवतः यही कुछ सोचकर बेबी ने पुस्तक छोड़ दी और दोनों हाथों को कमर पर बांधकर संतोष की सांस लेकर बोला "रहवा दे।"

पुस्तक के दो-तीन पृष्ठ फटकर, पुड़िया-सी बनकर दो-तीन बार छोटी मुन्नी के मुख की प्रदक्षिणा करके उसकी मुट्ठी से छूटकर गिर पड़े।

दो तीन कमरों का सतर्कता-पूर्वक 'इंसपेक्शन' (निरीक्षण) कर बेबी फिर लौट आया, और न जाने किन भावनाओं के आवेग में उसने दोनों हाथों से छोटी मुन्नी को दबाकर चूम लिया। प्रतीत होता है, जैसे छोटी मुन्नी को बेबी की यह अनधिकारपूर्ण चेष्टा बुरी लगी। यदि वह युवती होती और बेबी युवक, फिर कदाचित् ऐसी ही घटना घटती तो मैं निश्चयपूर्वक यह कह देता कि लज्जा, घृणा और क्रोध के आवेग में, अपने को अशक्त पाकर, छोटी मुन्नी रो पड़ी थी। बेबी ने प्रसन्न मन से कहा—"चाचाजी! छोती मुन्नी पुच्ची काला।"

वैसे ही छोटी मुन्नी के रोने ने उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। साश्चर्य उसकी ओर देखकर किंचित् क्षुब्ध हो वह बोला—"छोती मुन्नी लोया। चाचाजी, देको।"

चाचाजी ने बेबी को सलाह दी—छोटी मुन्नी को पुचकारकर चुप कराने की।··परन्तु बेबी उसे जितना ही चूमकर चुप कराने की चेष्टा करता छोटी मुन्नी उतना ही अधिक रोती जाती थी।

माजी ने नौकर को आज्ञा दी—"महादेव, छोटी मुन्नी को घर ले जाओ। अब वह भूखी हुई होगी।"

आज्ञा पाते ही महादेव छोटी मुन्नी को गोद में लेने के लिए बढ़ा और बेबी ने उसका प्रतिरोध करना आरम्भ किया—"रमवा दे। माजी छोती मुन्नी नई जाए, रमवा दे।"

परन्तु छोटी मुन्नी रो रही थी।

मनोविनोद और छेड़छाड़ के ख्याल से मेरे दोनों छोटे भाई भी कहने लगे—"महादेव, छोटी मुन्नी को ले जाओ।"

और बेबी कह रहा था—"नहीं, खेलने दो।"

महादेव ने छोटी मुन्नी को गोद में उठा लिया। बेबी खिसिया गया—"हूँ गुच्छो थई गई।" कहकर वह दीवार के एक कोने में मुँह छिपाकर खड़ा हो गया। लेकिन जैसे ही महादेव दरवाजे की ओर बढ़ा, वह अपनी दादी के पास जा उनका आंचल घसीटकर कहने लगा—"माजी। छोती मुन्नी नई जाये। रमवा दे।"

उसे गोदी में लिटाकर माजी ने बड़े प्यार के साथ उससे कहा—"बेटा रे, छोटी मुन्नी दुद्धू पी आवे, तब फिर आ जायगी।"

तभी उसके दोनों चाचा रतन और मदन चिल्ला उठे—"छोटी मुन्नी गई! छोटी मुन्नी गई!!"

बेबी ने तत्काल उठकर देखा, छोटी मुन्नी सचमुच चली गई थी। वह रो पड़ा, और गोद से उठकर भागता हुआ, छत में दीवार से चिपककर अश्रु-सिक्त नेत्रों से खड़ा हुआ धीरे-धीरे सिसक-सिसककर कहने लगा—"छोती मुन्नी! ओ छोती मुन्नी!!' आवी जा।"

हम सब हँस रहे थे।

× × ×

भावुकता के विस्तीर्ण क्षेत्र में घूमता हुआ जब मैं बहुत दूर निकल गया था, कल्पना ने इङ्गितकर मुझे दिखलाया—वेबी तब सात वर्ष का हो गया था और छोटी मुन्नी उससे लगभग दो वर्ष छोटी। छत के एक कोने में स्टूल पर बैठा हुआ, आकाश में उड़ती हुई पतंग को उचटती-सी नज़रों से देखते हुए बेबी गुनगुना रहा था—

"हे प्रभो आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए।"

तभी छोटी मुनी ने चुपचाप आकर उसकी आँखें मीच लीं।

हाथों को अपने हाथों से टटोलकर बेबी ने कहा—"छोटी मुन्नी!"

छोटी मुन्नी ने खिलखिलाकर हाथ हटा लिये और उसके पास बैठकर मुस्कराकर उसने कहा—"क्या गा रहे थे?"

"कुछ नहीं।" उसकी ओर मुंह फेर कर वह भी मुस्करा पड़ा।

"............"

"............"

"मैंने सुना है ताऊजी तुम्हें पढ़ने के लिये भेज रहे हैं।"

"कहाँ?"

"शान्ति-निकेतन।"—छोटी मुन्नी ने कहा।

एक क्षण के लिये स्तब्ध होकर बेबी ने कहा—"हिश! मैं शान्ति निकेतन वान्ति-निकेतन कहीं नहीं जाऊंगा।"

कल्पना के सहारे इससे अधिक और कुछ देखने की इच्छा न न हुई; क्योंकि मैं नहीं चाहता कि मेरा बेटा साहित्यिक न बनकर देवदास बने।

१९३७

जन्तर-मन्तर

मन्तर के बल से आदमी को शेर से भेड़ बना देने वाले पाटेनाले के शाहजी शैतान की भांति प्रसिद्ध हैं। होली, दिवाली या दशहरे की आधी रात को मसान में किसी शव की छाती पर बैठकर, 'तेली' की खोपड़ी में बकरे के रक्त को 'स्याही' रखकर, सुर्खाब के पर से उल्लू की 'कलेजी' पर ऐसा जन्तर लिख देते हैं कि आदमी की क्या हस्ती, शैतान भी कुत्ते की तरह दुम हिलाने लगता है। क़ादिर मियां का कहना है कि उनका सिन पौने चार सौ बरस का है, परन्तु मौला पहलवान उनकी आयु सवा चार सौ बरस की बताते हैं।

नवाब मुन्ना साहब के हाते में बसने वाले दूकानदार दो सौ रुपए माहवार के वसीकेदार चन्दा नवाब उर्फ़ 'चांद' लखनवी के शब्दों में, ऐन एतवार के दिन इतमीनान के साथ बैठकर बनाये गये खुद अल्ला-मियाँ की कारीगरी के ख़ास नमूने हैं!

उस दिन जरा-सी बात पर पीरबख्स ने क़ादिर मियाँ को पटा-बनेठी के फ़क़त दो-ही-चार हाथ दिखाकर ग़म खा लिया। क़ादिर मियाँ उस हाते में पिछले चार साल से बरफ बेचते हैं, और पीरू सिर्फ इसी साल से फुटपाथ पर तराजू लटकाकर बरफ की दो सिलें लेकर बैठकर कहने लगा है—"पाँच आने मन लुटा दिया, भाई!"

एक दिन क़ादिर मियाँ के पुराने ग्राहक छोटे मिर्जा ने पीरू से एक पैसे की बरफ खरीद ली। क़ादिर मियां की छाती पर जैसे किसी ने मुक्का मार दिया। अपने को सम्हालकर क़ादिर ने उनसे कहा—"आप भी हुजूर आज किसके कहे में आ गए? भला वह बरफ खरीदने काबिल है?"

छोटे मिर्जा ने मुस्कुराकर कहा—"क्यों भई, उसमें खराबी क्या है ?"

"अजी हुजूर, सदरवाली पल्टन के गोरे इसी के पानी से नहाते हैं। जितनी बरफ बची उसे अरदली-बेरा लोग इन ऐसों के हाथ बेचकर अपने कौड़े सीधे करते हैं। तभी तो बेचते हैं पांच आने मन ! हमारे यहाँ तो सरकार—सीधे 'डीपू' से माल आता है। जैसा आर्डर हुआ वैसा किया। 'डीपू' वाले अभी कह दें कि दो आने मन बेचो, हम दो आने मन बेचें; नहीं तो चाहे घुल जाय, आठ आने से पौने आठ नहीं हो सकते ग़रीबपरवर—हाँ !"

भाई रमजानी ने कादिरमियाँ को टोकते हुए गम्भीरता-पूर्वक मुँह बनाकर कहा—"अमाँ होगा भी। तुम भी यार, बस वही काजी जी दुबले क्यों ? कहें शहर के अँदेसे से। न भाई, दूर करो इस झगड़े को। असल असल ही है और नकल नकल ही। ये बेटा पीरू के दिन बरफ वेचेंगे ?"

कादिर मियाँ की पीठ पर हाथ रखकर रमजानी ने उसे तसल्ली दी छोटे मिर्जा मुस्करा कर चले गए।

पीरू मियाँ शाने हिलाते और कदम तौल-तौलकर रखते हुए कादिर की दूकान तक आये और अकड़कर कहने लगे—"शक्ल चुड़ैलों की, मिजाज परियों के। कसम खुदा की, वह भर्राटेदार रसीद किया होगा कि सब सिट्टी-पिट्टी गुम हो जायेगी, बेटा। हमारे गाहकों को भड़काता है ?"

"हूँ ! क्या सहल समझ लिया है किसी को भर्राटेदार रसीद कर देना। किसी सकत के पाले नहीं पड़े हो अब तक, वरना यह सारी सेखी हवा हो जाती मियाँ—समझे ?" अकड़कर छाती बाहर की ओर निकालते हुए कादिर ने कहा।

दो कदम आगे बढ़कर पीरू वोला—"क्या कहा—जरा फिर से कहना ?"

"कहा क्या–जो जी में आया कहा। तुमसे जो बनाए बने, बना लो।"

कादिर की घुटी हुई खोपड़ी पर पीरू का कड़ाकेदार हाथ पड़ा चट-से। दो-तीन आदमी बचाव करने के लिये बीच में पड़ गए। जमीन से गिरी हुई दुपल्ली टोपी को उठाकर सिर पर जमाते हुए कादिर ने कहा—"बड़े सोरेपुस्त बनते हैं। रूस्तमे-हिन्द हो रहे हैं। क्या कमजोर समझ के झप-से मार दिया। जवानी की कसम, इसका बदला न लिया तो नाम कादिर नहीं। मुसलमान नहीं काफिर कहना, काफिर हाँ !"

पीरू कुर्सी पर चुपचाप बैठा-बैठा हाथ की नसें चटकाता रहा। कादिर रमजानी से धीरे से कहने लगा—"साह के यहाँ चलते हो ?"

"कौन साह?"

हलके हाथ से ताली बजाकर एक हाथ गाल पर रखते हुए चकित-चितवनों से एक क्षण तक चुपचाप देखते रहने के बाद कादिर मियाँ बोले—"ये लीजिए। ये मजा देखो ! ..अमाँ तुम पाटेनाले के साहजी को नहीं जानते ? लखनऊ में रहते हो ? सारी खिलकत तो दौड़-दौड़कर उनके कदम चूमती है और····"

कुछ झेंपती हुई आवाज में रमजानी ने बात काटते हुए कहा—"समझ गये मियाँ। अच्छा, उनके यहाँ क्या करोगे जाकर ?"

"उनकी महरबानी से दो दिन में बेटा की आतें न कट जायें तो मूछ मुडवा दूं। इसने समझा क्या है ?"

रमजानी ने कहा—"हाँ यार, उनके बारे में सुना तो हमने भी बहुत-कुछ है, लेकिन कभी साबका नहीं पड़ा।"

हाथ आगे की ओर बढ़ाकर, हवा में इशारे बांधते हुए कादिर

ने कहा—"अमाँ वह आदमी थोड़े हैं। कसम खुदा की, पूजने लायक चीज है। अभी चार-पाँच दिन की बात है, जब्बार की बीबी के सर का भूत बड़ी सफाई से बैठे-ही-बैठे चुटकी बजाकर उतार दिया। टिकैतगंज वाले हुसेनी के ऊपर, तुम तो जानते ही हो, कैसी जबरदस्त मूँठ फेंकी गई थी। मगर भाई वाह, कमाल है शाहजी को, जैसे ही उनको पता लगा, वह खट से मूँठ फेरी कि चलाने वाले का सफाया हो गया। हुसेनी उनके खास मुरीदों में से हैं ना।"

रमजानी मियाँ आश्चर्य-चकित से कादिर की ओर देख रहे थे। एक क्षण तक निस्तब्ध रहकर उन्होंने कहा—"अमाँ हाँ!"

कुछ मजाक-सा उड़ाते हुए मुस्कुराकर कादिर बोले—"यह लीजिये, आपको ताज्जुब हो रहा है। अमाँ वह फरिश्ते हैं! फरिश्ते! अभी तो दम-भर में तुम्हें विलायत पहुँचा दें, और सारे विलायत को लाकर ऐशबाग के रामलीला वाले मैदान में बसा दें। तुमने उनको समझ क्या रक्खा है?"

कादिर ने रमजानी को अपनी बातों से प्रभावित कर उनमें शाहजी की जियारत करने की एक प्रबल भावना उत्पन्न कर दी। लच्छेदार बातों से अब वह अपने कौतूहल को अधिक न बढ़ने दे सका। उसने आग्रहपूर्वक कादिर मियाँ से कहा—"अमाँ भाई कब चलते हो उनके यहाँ? तुम भी यार खांमांखां को देर कर रहे हो। इन बेटा पीरू को खूब सबक मिलेगा उस्ताद, चोर साला!"

[२]

अवध की नवाबी से भी सम्भवत: दस-पाँच वर्ष पहले ही पाटेनाले का वह मकान बना होगा। सामने की दीवार की छोटी-छोटी पुरानी लखौरी ईंटें मकान

से अपना सम्बन्ध छोड़कर दीवार को खोखला कर चुकी थीं । एक-मंजिला छोटा-सा मकान सन् चौंतीस के भयंकर भूकम्प, और उससे भी बहुत पहले सन सत्तावन के गदर की स्मृतियों की छाप अपने शरीर पर लगाकर जीर्ण-शीर्ण दशा में आज भी अपना एक महत्व रखता है । सामने छोटा-सा बैठक खाना, जिसमें एक फटी हुई दरी बिछी हुई, एक चौकी पर पुराना-सा गद्दा, उस पर तेल और स्याही के सैकड़ों धब्बों से सजी हुई ? दस बारह पैवन्द लगी हुई छोटी-सी सफेद चादर पर मैला-सा गाव तकिया रक्खा हुआ था । यही शाहजी का आसन था । चौकी के सामने एक छोटी सी तिपाई पर लोहे का एक पंजा, दस-बीस लाल कपड़े के बने हुए गण्डे-तावीज और मिट्टी के प्याले में धूप और लोबान रक्खी हुई थी । । चौकी के दूसरी ओर हुक्का और गडुआ रक्खा था । नीचे फर्श पर शाहजी के दो-तीन मुरीद और चार-पाँच ताबीज़ पानेवाले इच्छुक बैठे हुए शाहजी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

एक ने कहा––"तुमने कुछ सुना, कल मौलवीगंज में डाका पड़ा था ?" दूसरा बोला––"अमाँ हाँ भाई, दिन दहाड़े डाका ! अंग्रेजी-राज न हुआ, अपने हिसाब जैसे नबाबी हो गई । साठ का सिन होने आया । जो कानों से सुना करते थे, वह अब आँखों से देखने में आ रहा है, भाई जान !"

तीसरे ने कहा––"यह कांग्रेसी-राज है । सरकार कोई नादान थोड़े ही थी कि झट से सौराज दे दिया । गांधीजी बहुत सौराज-सौराज चिल्ला रहे थे । सरकार ने कहा––लो, हमने दे दिया; अब करो इन्तजाम । बस भाई, उन्होंने सौराज तो दे दिया और झट से जेल से डाकू लोग छोड़ दिये··।"

विस्मित भाव से चुप-चाप सुनते-सुनते पहले व्यक्ति ने ताली पीटते हुए कहा––"यह लीजिये । मैं अब तक सोच रहा था कि यह

आखिरकार कांग्रेस के वजीर आजम, वही क्या भला-सा नाम—अरे वही पन्थजी यहाँ क्यों आए थे ?"

क़ादिर और रमज़ानी ने इसी समय कमरे में प्रवेश किया। सब आँखें एक बार, एक साथ ही, उनकी ओर उठ गई और फिर लोग कौतूहलपूर्वक बोलने वाले व्यक्ति से सब एक साथ ही पूछ बैठे—"अमां "क्या पन्थजी आये थे, अपने शाहजी के पास ?"

दूसरा और बोला—"हाँ भाई, इसमें ताज्जुब की कौन-सी बात है ? हमारे शाहजी कुछ ऐसे-वैसे थोड़े ही हैं। सातों बिलायत तक इनका नाम रोशन हैं, मियां समझते क्या हो ?"

क़ादिर ने रमज़ानी की पीठ पर टहोका मार कर धीरे से कहा—"सुन लिया भाई, पन्थजी तक यहाँ आते हैं।"

रमज़ानी मुग्ध भाव से मौन हो बैठा ही रहा। उसके मुख की चेष्टायें साफ़ बतला रही थीं कि शाहजी के प्रति उसके मनमें अगाध श्रद्धा के भाव उत्पन्न हो रहे हैं और उनके दर्शन करने की इच्छा प्रतिक्षण तीव्र होती ही चली जा रही है। उसने क़ादिर से प्रश्न किया—"शाहजी कब तशरीफ लाएँगे भाई ?"

क़ादिर ने उससे कहा—"अब आते ही होंगे।" फिर बैठे हुए व्यक्तियों से अपना परिचय कराने के लिए उसने नम्रतापूर्वक कहा—"तो पन्थज़ी किस सिलसिले में आये थे, भाई जान ?"

उसने कहा—"अब यह तो कैसे बतायें मियाँ ? कल दोपहर में उनकी मोटर यही गली के नुक्कड़ पर आकर खड़ी हुई। मैं इत्तफाक से वहीं खड़ा सलारू की दुकान पर बीड़ी ले रहा था। सामने देखा तो पन्थजी। उन्होंने मुझ से ही शाहजी का पता पूछा। मै उन्हें यहाँ ले आया। फिर दो घण्टे तक मुतवातिर पन्थजी और शाहजी में अकेले में बातें होती रहीं। चलते वक्त मैंने देखा—उनके हाथ में दो

तावीज थे। अल्लाह जाने भाई क्या राज है। बड़े लोगों की बातें वही जानते हैं।"

दूसरा व्यक्ति बोला—"अमाँ, आये होंगे वही अपनी सल्तनत के सिलसिले में। यह कांग्रेसवाले हैं। अंग्रेजी पढ़े-लिखे हैं तो क्या हुआ, अपना धर्म-ईमान थोड़े ही छोड़ते हैं ये लोग।"

सब लोग इस बात-चीत से प्रभावित होकर कुछ देर के लिये मंत्र-मुग्ध हो मूर्तिवत बैठे रहे। वैसे ही अन्दर खड़ाऊँ की खट-खट ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। दूसरे ही क्षण दर्वाजा खुला और शाहजी ने बैठक में प्रवेश किया।

अभ्यर्थना के लिये सब उठ खड़े हुए।

काला लम्बा-सा चोगा पहने, गले में सीपी, शंख, कौड़ियों और बड़े-बड़े मूंगों की पाँच-छः मालाएँ अस्तव्यस्त क्रम से पड़ी हुई थीं। दोनों कानों में इत्र की फुरहरियाँ लगी हुईं, आँखों में महीन सुर्मा, सर के लम्बे-लम्बे बाल और छाती छूती हुई लम्बी दाढ़ी मेंहदी में रँगी हुई थी। दाढ़ी की जड़ों में सफेदी झलक कर उनके श्याम मुखमण्डल की रौनक बढ़ा रही थी। एक ने झुककर फ़रशी सलाम करते हुए नम्रतापूर्वक कहा—"आदाब बजा लाता हूँ, हुजूर!"

"अख्खाह, मियाँ हुसेनी हैं! खुश रहो भाई, खुश रहो। कहो मियाँ, अच्छे तो रहे?" शाहजी ने पूछा।

"सब आपकी इनायत है, हुजूर! हम लोग इन्हीं कदमों के जेरसाये पड़े रहते हैं।"

"ना-ना भाई, ऐसी बात मत कहो। हम सब उसी परवरदिगार के बन्दे हैं। उसी के कदमों के ज़ेरसायेपरवरिश पाते हैं। तोबा—बिस्मिल्ला-उल-रहीमाने रहीम! तू ही है, तू ही है!" दोनों कान पकड़ कर हाथ और आँखें एक बार ऊपर की ओर उठाकर गदगद् भाव से, खड़ाऊँ

से पैर निकाल, दो जानूं होकर वह चौकी पर बैठे। फिर धूप और लोबान के धुएँ को हाथों में मल-मल कर चेहरे और दाढ़ी पर लगाने लगे।

"अरे हुजूर, हमारे लिये इस वक्त आप ही रसूल हैं," गद्गद् भाव से मियाँ हुसेनी ने कहा।

बैठे हुए दो-तीन व्यक्ति हाँ-में-हाँ मिलाने लगे। शाह जो बीच-बीच में उस बड़े 'जादूगर' को बार-बार सिजदा कर किसी-न-किसी रूप में अपने गुण अपने-आप ही बखानते जाते थे। बैठे हुए लोग गर्दन हिला कर, आश्चर्यचकित हो, 'वाह-वाह' करते जाते थे। एक आदमी उठता, मार्मिक स्वर में अपनी करुण कथा शाहजी के आसन के समीप जाकर सुनाता और शाहजी लच्छेदार बातों के साथ उसके लिये कोई यन्त्र अथवा चौराहे की पूजा करने की व्यवस्था देते।

क्रमश: वह कादिर मियाँ की ओर संकेत कर कहने लगे—"हाँ भाई, तुम्हें क्या कहना है ?"

कादिर और रमजानी मुग्ध भाव से उठकर शाहजी की गद्दी के पास तक आए। झुक कर दो बार सलाम की और फिर दोजानूं होकर बैठ गए।

बड़ी नम्रतापूर्वक संकोच के साथ कादिर ने उनसे कहना शुरू किया—"क्या बताऊँ हुजूर, एक आदमी हम को बहुत सताता है ?"

सुर्मीली आँखों को कुछ क्षण कादिर के मुख-मण्डल पर गड़ाते हुए शाहजी ने कहा—"ग्रमाँ आए कहाँ से हो ?"

"खाकसार, यहीं मालीखां की सराय में बरफ बेचता है। हुजूर दिन-भर में जो धेली-सूखी मिलती है, उसी से आपके जेरसाये परवरिश पाता हूँ। गरीबपरवर, वहीं साला पीरू-पीरू करके एक आदमी इसी साल से बरफ बेचने लगा है। हमें हुजूर इसकी कुछ शिकायत नहीं।

खाली इतना है कि वह अपनी ताकत के घमण्ड में ग्राहकों को भड़काता और तोड़ता है। पल्टनिये गोरों की नहाई हुई बरफ की सिलों को सस्ते दामों पर खरीद कर पांच आने मन बेचता है; और हम तो सरकार, डीपू के नौकर हैं। आठ आने मन खुला रैट है।"

शाहजी से बात-चीत करने का सौभाग्य प्राप्त करने की लालसा से रमजानी बोल उठा—"इतना ही नहीं हुजूर, वह इस गरीब को बहुत सताता है। अब आज ही दोपहर में देखिए, दस आदमियों के सामने इस गरीब के साथ मार-पीट कर बैठा। ताकत का घमंड है, हुजूर! अपने सामने किसी को कुछ समझता ही नहीं। हमने उसे समझाया कि देखो, अभी दुनिया में इतना अंधेर नहीं मचता; गरीबों की हिमायत करनेवाले भी अभी बहुत-से हैं। हमने कहा कि हमारे शाहजी को अभी खबर लग जाय कि तुम इस गरीब को सताते हो तो चुटकी बजाते तुम्हारे यह कल्ले-बल्ले दुरुस्त कर दें। फिर आपकी शान में हुजूर उसने ऐसी बात कही कि मेरी आंखों में खून उतर आया। हमने कहा कि तुमने शाहजी को समझा क्या है? उनकी शान में ऐसी बात निकालते हो? दस आदमी उसी को जेर करने लगे हुजूर, लेकिन अपने आगे वह कम्बख्त किसी की कुछ सुनता ही नहीं। जाहिल आदमी, बेपढ़ा-लिखा—बस, अपनी ताकत के घमण्ड में भूला हुआ है।"

शाहजी बोले—"अमां, तुम उसकी कुछ फिक्र न करो। हमें कोई कुछ कहता है, कहने दो। हम तो कहते हैं कि भाई हम नाचीज और तुम हमारे लिये सब कुछ हो। मगर हां, खुदा के किसी गरीब और कमजोर बन्दे को सताओगे तो इसका नतीजा तुम्हारे लिये बुरा होगा। अभी नरसों की बात है। राजा बाजार से मैं आ रहा था। एक आदमी एक कमजोर को दे हंटर, दे हंटर पीट रहा था। बेचारे ने हमारे पैर पकड़ लिये। कहा, शाहजी बचाइए। यह हमारी मजदूरी

भी नहीं देता और खामखां मार रहा है। हमने उसे समझाया तो वह हमीं को मारने दौड़ा। हमने कहा, भई हमें मार लो; मगर इस गरीब को मत मारो। इस पर वह अकड़ गया और एक हण्टर कस के फिर उस बेचारे को मार दिया। हमने कहा, खबरदार, अब मत मारना। लेकिन वह न माना, फिर जो हंटर उठाया तो खुदा की मर्जी, उसका वह हाथ सर्र से कटकर गिर पड़ा।"

रमजानी, कादिर और बैठे हुए अन्य लोग मुग्ध भाव से 'वाह-वाह' कर उठे।

कादिर ने विनीत भाव से हाथ जोड़र कहा—"बस हुजूर, यही हालत अपनी है। वह हर दम मारता-पीटता रहता है। गाली-गलौज और जबरदस्ती करता है। अब उससे कौन बोले? वह तो हुजूर रुस्तमेहिन्द हो रहा है, और हम कहते हैं कि हमारा भी अल्लाह है। और शाहजी—वह सब देखते हैं, सबके मन का हाल जानते हैं। वही हमारी खबर लेंगे।"

शाहजी बोले—"घबराओ मत भाई। खुदा बड़ा कारसाज है। उसने तुम्हें यहां तक भेज दिया, वही तुम्हारी अब खबर लेगा। वह किसी पर जोर जुल्म थोड़े ही देख सकता है मियाँ। देखें तुम्हें कहां मारा है।"

सिर से टोपी उतारकर मियां कादिर ने शाहजी को दिखाया।

अदृश्य चोर को शाहजी ने जैसे देख लिया हो! फिर वह गम्भीर भाव से सिर हिलाकर दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले—"हूँ—! तो उसने तुम्हें चांटा मारा! उसके हाथ में शैतान का असर है। जान पड़ता है, उसने किसी औलिया से अपने हाथ में यह असर पाया है।....दो इल्मों की लड़ाई होगी भाई। लेकिन खुदा बड़ा कारसाज है, उसने तुम्हें मेरे पास भेज दिया है।" इस तरह बात करते तिपाई से पंजा, धूप और लोबान की धूनी में उसे घुमाकर कादिर की खोपड़ी

पर तीन-चार बार फेरकर फूंक दिया। फिर बोले—"जाओ, शैतान का असर तुम्हारे सिर से निकाल दिया। एक पैसे का गोश्त ख़रीदकर और कड़ुए तेल का एक चिराग तश्तरी में रखकर किसी चौराहे पर रख देना। और कल सबेरे सवा गज लाल कपड़े में बीस आने पैसे और एक ताजा फूल लेते आना। मैं कल रात मसान जाऊंगा; वहीं सब ठीक हो जायगा। परसों सबेरे तुम्हें ताबीज दे दूंगा। अल्ला चाहेगा तो दो दिन में मूजी के पैर उखड़ जायँगे।"

रमजानी और मियां कादिर अति नम्र भाव से सलाम-सिजदा कर प्रसन्न हो उठ खड़े हुए।

(३)

रास्ते-भर मियां कादिर और भाई रमजानी प्रसन्न-मन बातें करते चले आये।

"क्या मारा उस्ताद! शाहजी अब इसके घर में जो किसी को बचने दें! सुन लिया न भाई, शाहजी गुण्डे-बदमाशों के बहुत ख़िलाफ़ हैं। तुम्हें किस्सा बता तो रहे थे।" कादिर ने गद्‌गद् भाव से कहा।

उन्मत्तकारी प्रसन्नता जब किसी भोले हृदय को दबोचकर बैठ जाती है, मनुष्य तब उच्छृङ्खल और निर्भीक हो जाता है।

अपनी दुकान पर पहुँचकर कादिर मियां ने हँसकर जोर जताना शुरू किया—"ऐ भाई, वह हाथ मार दिया कि बेटा जिन्दगी-भर न भूलेंगे। अपने को बड़ा धन्ना-सेठ समझते थे, सरऊ! कल ही लो, गरीब और कमजोर को सताने का क्या मजा मिलता है?"

इसने पूछा, उसने प्रश्न किया और मियाँ कादिर बताना ही

चाहते थे कि रमजानी ने उसके हाथ की चुटकी लेते हुए कहा—"तुम भी यार कम्पनी-बाग में चरने के लिये छोड़ देने काबिल हो। लाख बार समझा दिया कि फजूल की बकवास न किया करो। तुम क्या खाके किसी से कुछ समझोगे, डेढ़ पसली के आदमी....।"

मुस्कुराकर अपने दोनों कान पकड़ते हुए मियां कादिर ने उससे कहा—"अच्छा बाबा, गलती हुई; माफ़ कर दो, मियां!"

"नहीं, आप खामखां की शान में आ जाते हैं। फजूल की बकवास शुरू करदी। अभी कहीं वह भी किसी औलिया से दुआ-तावीज ले आये तो?"

"ले बस, अब आप रहने दीजिये। शाहजी का इल्म काटने-वाला दुनिया में है कौन? भुट्टे-सा भूनकर रख देंगे, वह उसको भी!"

× × ×

रमजानी के मन में एक कौतूहल था। शाहजी की आवश्यकता से अधिक प्रशंसा सुनकर उसे सिद्ध-साधकों पर एक अनुपम श्रद्धा और तांत्रिक विधानों पर अटल विश्वास जम चला था। वह बड़े उत्साह के साथ शाहजी का भक्त बन गया।

उस दिन वह सबेरे जाकर कादिर के लिये तावीज ले आया। और शाम को श्मशान-पूजन के लिये शाहजी की आज्ञानुसार, एक बोतल दारू, सवा गज लाल टुकड़ा, बीस आने पैसे, इत्र की फुरहरी, फूल और बताशे आदि शाहजी की सेवा में पहुँचाकर, उनके काले चोगे का दामन चमकर चला आया। शाहजी ने भी उसको और उसके मित्र को अभय-दान देकर, दूसरे दिन सबेरे ही मियाँ पीरबख्श की शक्ति क्षीण कर देने का विश्वास दिलाया।

: × ×

दूसरे दिन सबेरे—

कादिर अपनी दूकान पर बैठा बीड़ी पी रहा था। प्रसन्नता किलकारियां मारती हुई उसके मुखमण्डल पर भोली क्रीड़ाएँ कर रही थी।

वैसे ही, मियां पीरबख्स बढ़िया-सी रेशमी तहमद बांधे और चिकन का चुन्नटदार कुर्ता पहिने, मजे में सिगरेट फूंकते हुए ठेले पर बरफ की दो सिलें लदवाकर आते दिखाई पड़े।

उस दिन कादिर मियां की आंखों ने देखा कि पीरू के चेहरे पर एक अजीब मुर्दनी-सी छाई हुई है। कादिर मियां ने अपना बदन तौलते हुए अकड़कर कहा—"सुनते हो मियां, अपनी बरफ उस कोने पर रखियेगा। बहुत दिन सेखी बघार ली बेटा! अब अपना पन-साखा बढ़ाइये।"

शाहजी के अभय दान और पुण्य प्रताप से, कादिर उस समय अपने को भेड़िया और पीरू को निर्बल बकरी का बच्चा समझ रहा था।

सिगरेट का कश खींचते-खींचते आश्चर्यचकित-सा होकर उसने कादिर को घूरकर देखा। पिछली रात उसने पांच रुपये वाली अंग्रेज़ी शराब पीकर चौक के एक कोठे पर बड़े जश्न किये थे। इस समय भी वह उस मधुर-स्वप्न को अपनी आंखों के सामने ही देखता चला आ रहा था। उसकी आंखों में खुमारी भरी हुई थी, और सिर में पीड़ा थी। फिर भी वह प्रसन्न था! आज वह लोगों को सुनाना चाहता था कि उसने पांच रुपये बोतल वाली, खास मोहर लगी हुई, विलायती शराब पी है। कादिर को इस तरह, व्यर्थ के लिये, झगड़ा करते देखकर उसे आश्चर्य हुआ और क्रोध भी। उसने तमककर कहा—"अबे बेधा हुआ क्या? खामखां को सबेरे-सबेरे लड़ता है!"

कादिर ने तनकर दूकान पर खड़े होते हुए कहा—"अब इस अकड़ म न रहियेगा मियां। ज्यादा तीन-पाँच करोगे तो यह सारी जुल्फें बिगाड़ दूंगा। बड़े बाँके बने हैं। यह सारा बाँकापन पल-भर में हवा कर दूंगा। तूने समझा क्या है ?"

पीरू का आश्चर्य-भाव क्रमशः बढ़ता ही जाता था। वह सोच रहा था कि आज कादिर मियाँ किस बल पर अकड़ रहे हैं ? फिर भी क्रोध और अपमान की जलन से उसका चेहरा तमक उठा। उसने दो कदम आगे बढ़कर कादिर से कहा—"अबे क्यों जान देने पर तुला हुया है ? सबेरे-सबेरे खामखां तकरार बढ़ा रहा है। कमजोर समझ के गम खा जाता हूँ, वरना चटनी की तरह पीस दिया होता।"

कादिर मियाँ का दिमाग आज सातवें आसमान से बात-चीत कर रहा था। वह दूकान से उतर कर पीरू से गुथ गया, दो-तीन हाथ भी चला दिये।

कुर्ता फट जाने और अपमान की जलन से आवेश में आकर उसने कादिर की पसली पर कस-कस कर चार घूसे जमा दिये।

दुबला-पतला, शक्ति-हीन कादिर इस भीषण मार को सह न सका। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा—जैसे उसकी पसलियाँ टूट गई हों। उसकी आंखों के सामने एदकम अँधेरा-सा छा गया। उसका दम घुटने लगा। सिर चकरा गया और वह एक भीषण यातनामयी आह खींचकर, निर्जीव-सा हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। कँकरीली सड़क पर गिरने से उसके सिर में बहुत चोट आ गई। सिर से ख़ून बहने लगा।

लाल-लाल आँखों को देखकर आस-पास खड़े हुए व्यक्तियों को यह साहस न हुआ कि पीरू को कुछ भी कहें।

एक व्यक्ति दौड़ता हुआ जाकर कोतवाली में रिपोर्ट लिखवा आया और बाकी तीन-चार आदमी कादिर को होश में लाने की चेष्टा करने लगे ।

पीरू अनमने भाव से कुर्सी पर टाँग-पर-टाँग चढ़ाकर बैठा, सिगरेट पीता हुआ आसमान की ओर चुप-चाप ताक रहा था ।

पुलिस आई और तहकीकात कर पीरू को पकड़ ले गई । डॉक्टर आया और उसने चोट की परीक्षा कर कादिर को फौरन अस्पताल ले जाने की सलाह दी ।

डॉक्टर के प्रयत्नों से कादिर होश में आया । आंखें खोलकर कातर-भाव से उसने एक बार आस-पास खड़े हुए लोगों को निहारा । कराहते हुए कादिर ने धीरे-धीरे कहा--"अरे, रमजानी कहाँ है ? उसे शाहजी के पास भेजो । साले ने हड्डी-पसली तोड़ डाली । खुदा इसे गारत करे !" फिर दोनों हाथ थोड़ा ऊपर उठाने की चेष्टा करते हुए, दीन भाव से आकाश की ओर ताक कर उसने कहा--"अल्लाह करे उस साले का बेड़ा गर्क हो........अरे मेरी अम्मा ! आह !! आह !!!"

अस्पताल में शाम को रमजानी ने कादिर को बतलाया कि शाहजी फरमा रहे थे कि दो इल्मों की लडाई छिड़ गई है । कल रात मसान पर इसी तना-तनी में बात बहुत आगे बढ़ गई । पीरू को एक औलिया ने शैतान के सिपुर्द किया है, इधर शाहजी ने मन्तर के बल से शैतान को जला डालने की कोशिश की । उधर वह औलिया भी मन्तर के बल पर टक्कर ले रहा है । कल रात इसी लड़ाई में आसमान के तारे टूटते-टूटते बचे । सारी दुनिया जल कर खाक हो गई होती । वह तो कहो शाहजी ने बचा लिया । अब कम-से-कम पचास रुपये हों तो साले का "सत्तियानास" हो जाय । बड़े-बड़े कुलाबे भिड़ेंगे ।

पीड़ा से क्लान्त होकर कादिर ने टूटे हुए हृदय और मरी हुई आवाज में, पीली-पीली निस्तेज आँखों से, रमजांनी की ओर ताकते हुए कहा—"पचास रुपये ? कहाँ से लाऊँ बाबा ? ....अरे मेरे अल्लाह !"

उसने आँखें बन्द कर लीं। बन्द आँखों की कोरों से आंसू बह कर कान के सहारे होते हुए बिस्तरे पर टपक पड़े।

१९३६

मरघट के कुत्ते

"ॐ क्रीं चिच्चपिशाचिनी स्वाहा..ॐ हंसि हंसि जने ह्रीं क्लीं स्वाहा..ॐ ह्री क्लीं..काल कर्णिक ठः ठः स्वाहा..चल, चल..चार..पाँच..चल ॐ कारमुखे विद्युजिह्वे ॐ हुँ चेटके जय जय स्वाहा..चल फलाँग..फलाँग!"

बुझती हुई चिता के पास ठिठके हुए जरख को अघोरी ने कर्कश स्वर में आदेश दिया। गर्दन दबा कर जरख अपना बदन सिकोड़ते हुए एक बार और चिता लाँघने के लिए तैयार हुआ। पोले पंजों से एक कदम आगे बढ़ा फिर गर्दन डाल दी और हाँफता हुआ दुम हिलाने लगा।

पालथी मारे आसन पर बैठा हुआ अघोरी आवेश में झपटा। धीमी-धीमी उठती हुई लौ में अघोरी की लाल आँखें और भी लाल लगती थीं। काले तिल के दाने झपाटे के साथ लेते हुए उसने अपने हाथ झटका कर जरख के मुंह पर तान मारे।

"ॐ ह्री रक्त कम्बले महादेवि मृतक मुत्थापय प्रतिमां चलाय पर्वतान् कम्पाय नीलय विलसत् हुँ हुँ स्वाहा..... ॐ ह्री क्लीं..!"

जरख वैसे ही खड़ा हाँफ रहा था। अघोरी ने मन्त्र बड़बड़ाते हुए उसे देखा। क्रोधावेश में उसका बदन फड़क उठा। तिल के दाने लेकर तेजी से उसने हाथ उठाया। जरख ने एक क्षण के लिये अपनी छोटी-छोटी आँखें मीच लीं। साहस बटोर कर वह शीघ्रतापूर्वक चिता को लाँघ गया। मंत्र पढ़ते हुए अघोरी के काले-काले दाँत चिता की लौ में चमक उठे। वह और स्फूर्ति के साथ मंत्रोच्चार करने लगा।

उल्लू का कलेजा बायें हाथ में ले, उसमें घी, जौ, तिल, रक्तचन्दन

और जवाकुसुम डाल तथा बकरे के हृदय का रक्त छिड़क कर जोर-जोर से मन्त्र पढ़ता हुआ अघोरी उठ खड़ा हुआ ।

चिता के दाहिनी ओर, पास ही, जरख पड़ा हुआ जोर-जोर से साँसें घसीट रहा था । अघोरी ने उसे देख भर लिया । अपना मन्त्र समाप्त कर उसने चिता में आहुति दी । बुझती हुई ज्वाला एक बार प्रचण्ड होकर धीरे-धीरे धीमी होने लगी । कुछ फूल और जौ उठा कर अघोरी ने जरख पर तान मारे—"उठ बे एक बार और चऽल !"

अघोरी के होठों पर मुस्कराहट, चिता की लौ, जरख की टाँगें और आँखें प्राय: समान रूप से लड़खड़ा रही थीं । किसी तरह खड़ा हो वह दयनीय नेत्रों से अघोरी को ताकने लगा ।

अघोरी फिर तिल उठाने के लिये झुका । उस पार जाने के लिए जरख उछला, लेकिन चिता ने इस बार स्वयं उसे ही आहुति रूप में स्वीकार कर लिया ।

अघोरी तड़प उठा । जरख चीत्कार कर उठा । क्रोधावेश में ओठ दबा, घी की हाँडी उठाकर अघोरी ने मरते हुए जरख पर बल-पूर्वक प्रहार किया—"जा साले तेरा सत्यानाश हो । हरामी के पिल्ले.... भ्रष्ट कर दिया उल्लू के पट्ठे ने....!"

अघोरी की गालियों में मरते हुए जानवर की करुण पुकार दब-सी गई । हाँडी का घी चिता में आखिरी बार जोश ले आया । गालियों का खजाना लुटाता हुआ अघोरी अपनी कुटिया की तरफ चला ।

लकड़ी की टाल के सामने तराजू के पास, बाँस की खटिया पर लेटा हुआ खिलावन चित हो दो-एक बार जोर-जोर से जमुहाई लेते हुए बड़बड़ा उठा—"राम हो, राम हो, हम जानी डेढ़ क टेम होई । काहे बाबा ?"

"चुप बे, डेढ़ का बच्चा, ससुरा, चल उठ, मेरी चिलम तो ले आ..

भ्रष्ट हो गया, जग्य साला..ऐसा घोर कलजुग बेईमान ससुरा..अब मर गया क्या साले..उठता है कि..!"

"जाइति हयि बाबा, जायति हयि।"

बाबा बरगद के चबूतरे पर जरा कमर सीधी करने लगा। खिलावन को आता हुआ देख, नब तौलते हुए उठा। एक अंगड़ाई ली, फिर उसके हाथ से चिलम लेते हुए बोला--"तपस्या क्या होती है बे, जानता है कुछ ?

चिलम की ओर देखते हुए, खीसे निपोर कर, हाथ मलता हुआ खिलावन बोला--"हाँ बाबा, जानति हयि।"

चिता से आग लाने के लिए बाबा बढ़ा। हड्डी के टुकड़े से अंगारे खींचे, चिलम पर फूँकते हुए, उसने पूछा--"क्यों बे तपेसरी का लौंडा कब मरेगा ?"

आग तापते हुए खिलावन बोला--"जमीन पर तौ लै लिहिन है वहिका। आज भिनसरहै आँखीं उलटि दिहिस रहै। मुल परान-पापी कतूं अटके आंय। याकै याकु जवान-जहान लरिका--का बाबा, उजरिगा तपेसिरियौ बिचरऊ !"

चिलम के चमकते हुए अँगारों में बाबा के मोटे-मोटे ओठ फड़कते दीखे।

"उजड़ने दे साले को। सुन बे, तेली की जात है। मैं उसके मुर्दे को सिद्ध करूँगा।"

"मुल तपेसरी..!"

"चुप बे तपेसरी के बच्चे। तेरा मालिक है, होगा। देख बे, लहास फूंकने न पाय उसकी।"

कुछ दूर पर कब्र-बिज्जू जमीन में पोल कर रहा था। एक कुत्त ने धीरे-से उसकी दुम दाँतोंतले ली। जमीन के अन्दर से धीमी-सी गुर्राहट निकली।

आस-पास दो चार कुत्ते भूंक रहे थे। दूर पर सियारों का हंगामा था।

सनसनाती हुई हवा पत्तों को खड़खड़ा कर बह चली। चिता की गर्म राख के थपेड़ों ने खिलावन और अघोरी को उठ जाने के लिए मजबूर किया।

"लौंडे का ब्याह भी तो हो चुका है न ?"

"हाँ बाबा, याक पखवारा भा होई। अबही तौ हाथे क्यार मेंहदियौ ऊजरि आय। ई हैजा ससुर बिकट महामारी आय। आजु काल्हि तौनु ई जानि लेओ, अकि पाटि दिहिस अहै मसान ससुर। मुल मोहना सार परी पाय गया रहै, परी साँचे बाबा।"

"आँख है तेरी उस पर ? क्यों बे ?"

"नाहीं बाबा, च्-च् राम राम। आँखी का...!"

"उड़ता है बे उल्लू..साले..अच्छा जा, फूंकने न देना उसे। परी तुझे दिलवा दूंगा।"

अघोरी अपनी कुटी में घुस गया।

हवा के झोंके से पत्ते फिर खड़ाखड़ा उठे।

दूर पर एक कुत्ता रोया—"हूः SSS हूः !"

तीन-चार कुत्ते साथ में सुर मिला उठे। नदी के उस पार सियारों का शोर आसमान उठाये था।

(२)

का हाल अहै मोहन क्यार ?" दूकान का टट्टर हटाते हुए खिलावन ने पूछा।

तपेसरी एक टाँग उठा कर चारपाई पर बैठ गया। चेहरा सूख गया था। आँखें लाल थीं। चार दिन की दाढी स्याह चेहरे पर सफेदी

बन कर छाई हुई थी। दुपलिया टोपी उतार कर, सिर के खसखसी बालों पर हाथ फेरता हुआ, तपेसरी सूखी हँसी हँसा। फिर धीरे-धीरे बोलना शुरू किया—"का हाल बताई तुम का। बस इहै समुझि लेओ, दम-दुई मिनट माँ आवै चहति है—यौ आपन दुकान द्याखै।"

आँखों की कोरों में पानी भर आया।

"राम नाम सत्य है..सत्य बोलोऽमुक्ति है..हरि का नाम.." एक बारात आई।

"क्या भाव दीं ?"

"चौदह पसेरी" तपेसरी ने बगैर सिर ऊँचा किये ही जवाब दिया।

"अरे ठीक बोलो भई।"

"ठीक ही है लाला। ई मोल-तोल की जगह नहीं..खिलावन, तौल तो दे भैया।"

तराजू पर बटखरे चढ़ने लगे।

तीन, चार, पांच लाशें आई। तपेसरी दोनों हाथों में मुँह छिपाये चारपाई पर पड़ा रहा।

खिलावन बोला—"न होय तौ घरै जाओ दादा।"

तपेसरी अपनी खयाली-दुनिया से चौंका—"नाहीं हो, का धरा आय घर माँ ?" तपेसरी चुप हो गया। आँखों में फिर पानी भर आया। वह बोला—"बहुरिया गुम्म-सुम्म बैठी आय, घूंघट माँ मूड़ी डारे। जौनी आँखिन ते वही क्यार सुहाग-सुआँग निहारा....का कही, बाजी पलटि गई हमार तौ !"

आँसू ढुलक कर कान के नीचे से बह गये।

नाव से एक अर्थी उतरी। एक तरफ के डंडे नाववाले ने उठाये, दूसरी तरफ एक औरत ने। किसी तरह उन्हें सम्भाल कर किनारे पर लाई। साथ में एक तीन चार बरस का बच्चा था।

काँपते हुए हाथों से आँचल का खूंट खोल कर औरत ने चार रुपये निकाले। नाव वाला उन्हें लेकर तपेसरी की दूकान पर आया।

लकड़ियाँ तुल गईं। खिलावन ने रुपये परखे। एक जाली रानी छाप था और तीन खोटे।

"रुपये दुसरे लाओ हो।" नाव वाले के सामने उन्हें फेंकते हुए खिलावन बोला।

ज़मीन से रुपये उठा कर उन्हें ग़ौर से हथेली पर उलट-पुलट कर देखते हुए उसने कहा—"काहे?"

बग़ैर सिर उठाये ही वह बोला—"खोटे हैं।"

"खोटे हैं, का.....?" नाव वाला तपेसरी की तरफ देखने लगा।"

"अरे खोट आंय ना। कहि तौ दिया।" खिलावन ने जवाब दिया।

"चारिउ?"

"हाँ-हाँ बे। जा कह दिहा न। जान काहे को खा रहा है मेरी। खिलावन, उतार लकड़ी। ऐसनें परान हमार सूली पर ससुर, ऊपर तें टिर्र-टिर्र। आवति हैं बड़े नहिं के धन्ना सेठ बने मुर्दा जलावै।" तपेसरी कराहा।

नाव वाला मुंह लटकाये चला गया। सामने, मुर्दे के पास घूंघट में मुंह छिपाये औरत बैठी थी। लड़का कुरते को दाँतों से चबाते हुए, चुपचाप खड़ा, इधर-उधर देख रहा था।

नाव वाला पास आकर बोला—"ई न चलिहैं।"

स्त्री ने अपना घूँघट हटाया। सलोनी औरत—उम्र बीस बाईस से ज्यादा न होगी। बड़ी-बड़ी आँखें लाल हो रही थीं। चुपचाप नाव वाले का मुँह ताकने लगी।

"कहति अहै खोट आंय।"

अर्थशून्य दृष्टि से वह चुपचाप उसे ताकती रही। फिर भर्राये हुए गले से से बोली—"हमारे पास तौ औरु न होई।"

नाव वाले के पास भी कोई जवाब नहीं था। वह चुपचाप लाश की तरफ देखने लगा।

औरत ने भी एक बार उस तरफ कुछ देर तक नजर की, फिर घूंघट डाल दोनों घुटनों के बीच में मुँह छिपा बैठ गई।

जलती हुई चिताओं को देखने में लड़का खोया हुआ था।

एक के बाद एक, तीन लाशें आईं। जब राम नाम सत्य की आवाज आती औरत घूँघट उठा कर देख लेती। चिता जलती, महापात्र के बँटवारे होते, मसान का कर चुकाया जाता, लोग चल देते।

औरत अपनी बेबसी से ऊब उठी। ऊब कर लाश की छाती पर घूंघट रख रोने लगी।

"दवा दरुऔ न भई तुम्हारी हाय मोरे रामाऽऽ! अरे मोरे सिर-ताज होऽऽ। राम हम का करीऽऽ····!"

लाश हिल जाती थी।

लड़के ने माँ को देखा, बाप की ढँकी लाश को देखा, नाव वाले की तरफ आँख उठाई। जब कुछ समझ में न आया तो वह भी फुक्का मार कर उठा। सामने एक चिता जली। चुप होकर एकटक वह उसे देखने लगा। फिर रोने लगा। दो कुत्ते लड़ते-लड़ते पास आ गये। लडका भाग कर अपनी माँ के कन्धे से चिपट कर चुप हो गया।

दो-ढाई सौ आदमियों के जुलस के साथ एक विमान आया। चन्दन का गट्ठर खुल गया।

अघोरी छोटा-सा डोल लिये झोपड़ी से बाहर निकला। पेड़ के नीचे नाव वाला चुपचाप बैठा था। खट-खट करता हुआ अघोरी पास आया।

"क्या है रे, जलाता क्यों नहीं इसे?"

उसकी आवाज सुन स्त्री को सहारा-सा मिला। अपने पति की लाश पर हाथ रख वह और जोर से रो उठी। लड़के ने अघोरी बाबा की सूरत देखी, मां को रोते देखा और फिर मां से चिपट जोर जोर से रोने लगा।

"अच्छा अच्छा, मरने दे····मौत आई थी····जावे, एक डोल पानी तो खींच ला कुयें से।"

बाबा ने डोल आगे बढ़ा दिया। नाव वाला चुपचाप लेकर चला गया।

अघोरी लाश के सिरहाने बैठ गया। कफन उठा कर लाश का मुंह देखा। औरत सरक कर बैठ गई।

"तेली है····तेली?"

घूंघट से एक आंख चमकी। औरत ने सुबुकते हुए धीरे से कहा—"नहीं, लोध।"

पेशानी और आंखों के किनारे की रेखायें तन गईं। दोनों घुटनों पर हाथ टेक कर अघोरी उठ खड़ा हुआ। उठने में, गले में पड़ी हुई हड्डियों की चार-पांच मालायें, खड़-खड़ कर बज उठीं। खिजलाहट भरे स्वर में अघोरी गरजा—"चुप रह ससरी। कमीनी शंकरजी के पवित्र स्थान में रो-रो कर बिघन डालती है। खबरदार, सबेरे-सबेरे

बचन खाली गया मेरा। कलजुग में मरा साला लोध । कमीनी रोती है, ऊपर से।"

लोध के मुर्दे की पत्नी सकपका कर रह गई। महापात्र तथा दो-चार और लोग तमाशा देखने के लिये आ गये ।

नाव वाले से डोल झपट कर अघोरी बड़बड़ाता हुआ कुटी में चला गया।

धीरे-धीरे खोटे रुपयों का क़िस्सा मालूम हुआ। विमान की लाश के लड़के ने सुना। उसने धरम किया। लोध की लाश चिता पर चढ़ी।

"करम कौन करेगा··यह लड़का है··अच्छा, यही सही।"

लड़के के एक हाथ में जलती हुई पुआल पकड़ा कर दूसरे हाथ को अपने हाथ में लेकर, महापात्र चिता की सात परिक्रमा कराने लगा। लड़का घबरा कर रो उठा। माँ को पुकारने लगा। महापात्र जल्दी-जल्दी उसे चारों तरफ़ घुमा रहा था। औरत अलग खड़ी रो रही थी।

"अच्छा, लाओ-लाओ जल्दी करो। सवा रुपये पैकरमा के आठ आने परेत-भोजन, बीस आने मेरी दच्छिना। जल्दी करो जल्दी !"

विमान पर ज़रकिनार दुशाले का कफ़न था। मेहतर ने हाथ लपकाया। महापात्र का ध्यान उधर ही था। दाहिना हाथ औरत की तरफ फैला हुआ था। निगाह सामने थी। मेहतर को दुशाला लेते देख वह चीख़ उठा—"ठहर बे, ठहर बे, ओ डोम के बच्चे, वो मेरा हक्क है।"

डोम का बच्चा भी सीना तान कर अकड़ा—"है हक्क तुम्हारा ? कभी तेरे पुरखों ने भी कफ़न लिया था ?"

"हाँ-हाँ, बड़ा कनूनिया बना है। खबरदार जो एक कदम भी आगे बढ़ाया। हक्क की बात कर।"

महापात्र औरत की ओर मुड़ा—"जल्दी निकाल जल्दी. मेरी

दच्छिना ! टके का मुर्दा ससुर, मेरा बावन रुपये का दुसाला चला गया तेरे पीछे । अब जल्दी कर ना ।"

आँचल की गाँठ खुल गई । महापात्र झपट कर चारों ले गया-खरे भी और खोटे भी ।

डोम आगे बढ़ा । महापात्र एक टिखटी का बाँस लेकर झपटा—"कपाल किरिया कर दूंगा साले तेरी । बायें हाथ से ढीला कर दे मेरा दुसाला, चुप्पे से !"

"आये बड़े धौंस जमाने वाले ।"

"धौंस वाले क्या बे..वो तो मेरा हक्क है..लँगोटी तेरी होती है..जा ले जा ।"

"वो तो मेरी हुई । उस पर क्या बोलोगे ?"

"अबे तो कफ़न दे न मेरा । मारे बाँस भुरता कर दूंगा साले..लाला, तुम्हीं धरम की बात कहो..बोलो..कफ़न किसका है ?"

तपेसरी के घर से ख़बर आ गई थी । वह रोता हुआ जा रहा था । महापात्र ने उसकी बाँह पकड़ कर पूछा ।

तपेसरी क्षुब्ध हो उठा । आँसू से भरी आँखें ही महा-पात्र की ओर उठा कर रह गया ।

महापात्र ने उसे देखा । पूछा—"क्या हुआ..क्या मोहन.."

तपेसरी हिचकियाँ लेकर रो उठा ।

"राम-राम, राम-राम । महामात्र एक क्षण रुक कर बोला—"अच्छा, धरम की बात कहे जाओ, हक्क मेरा है न ?"

तपेसरी ने नाक साफ़ करते हुए भर्राये गले से जवाब दिया—"हाँ भैया तेरा है ।" फिर जल्दी से पिण्ड छुड़ा कर चला गया ।

"ले बे ले, देख ले ।"

"उनके कहने से होता क्या है ?" मेहतर बोला—"हक्क मेरा है ।"

"बड़ा हक्क वाला बना है ।" बाज की तरह झपट्टा मार कर महापात्र ने मेहतर के हाथ से दुशाला छीन लिया ।

इसी समय अघोरी बाहर निकला ।

"देख लो बाबा, देख लो । तुम्हीं धरम की बात कह दो । कप्फन किस का होता है ? ये महाब्राह्मन का बच्चा साला मेरा हक्क लिये जाता है । कफन भी नहीं जुड़ेगा साले को, मेरा जी दुखा के, हाँऽ !" डोम मुंह और आँखे पोंछने लगा ।

"जी क्या दुखाया बे हक्क मेरा है । लाला तपेसरी भी कह गये न अभी ।"

अघोरी ने महापात्र की ओर जरा देखा । फिर भंगी से बोला—"ले जाने दे साले को । तपेसरी भी हरामी है । उसका तू उतार लेना बे । लाता होगा उठा के अभी । जा बे, मेरी चिलम में आग तो ले आ ।"

महापात्र धीरे-धीरे बड़बड़ाता हुआ खिसक गया । मेहतर आग लेने चला ।

अघोरी ने तन कर एक अँगडाई ली—"शिव-शम्भो. . हर हर ।"

फिर खिलावन की ओर तिरछा मुड़ कर बोला—"खिलावन, तौल रख बे लकड़ी । समझा !"

लाल-लाल आँखें खिलावन की आँखों में जा पड़ीं । खिलावन सकपकाया । धीरे-से बोला—"हाँ बाबा ।"

"हाँ बाबा नहीं बे, होगा बाबा । समझा ?"

खिलावन चुप रहा ।

मेहतर अँगारे ले आया । चिलम उलट कर बाबा ने गाँजा भरा ।

फिर अगारे रख, दम लगाते हुए, ओंठ चबा कर भँगी से बोला—"उस तेली का लौंडा फुंकने न पाये। समझा बे। दुसाला तुझे दिलवा दूंगा।"

"मुल बाबा, पचास के बीच में ये होगा कैसे?"

"होगा बे, होगा। बाबा कहता है, होगा। भसम कर दूंगा सारे मसान को आज।"

चिलम उलटा कर बाबा तेजी से अपनी कुटिया में चला गया।

"खिलावन!" अन्दर जाकर बाबा ने आवाज लगाई।

खिलावन चला। उसे बाहर ही से आदेश मिला—"किसी मजूरे को भेज। सहर से सामान मँगाना है।"

खिलावन उल्टे पाँव टाल पर लौटा।

बाबा की कुटी से लौट कर मजदूर ने खिलावन से कहा—"बाबा मसान जगहिहें आज। पूंजा खातिर समान मँगाइन है। तनी आपन सैकिल तो दोओ हमका।"

खिलावन ने चुपचाप साइकिल की ओर देख कर गर्दन हिला दी।

घण्टे-भर बाद मजदूर साइकिल के पीछे गठरी बाँधे लौट आया। फिर हुक्म मिला। मजदूर गया। गाँव से एक बकरा चुरा लाया।

नदी में दो गोते लगा कर अघोरी गीले बदन कुटी में जमे हुए आसन पर आकर बैठ गया। पूजा आरम्भ की। बकरा बलिदान किया।

अँधकार धीरे-धीरे बढ़ रहा था।

खिलावन, मजदूर, मेहतर, महापात्र, चुपचाप खड़े, 'राम-नाम-सत्य' की आवाज निरन्तर समीप आते सुन रहे थे।

लकड़ी की टाल के सामने ही मोहन की अर्थी को विश्राम मिला।

"देख ले बेटा, देख ले··हाय, अब इस गद्दी को कौन सम्हालेगा मेरे लाल ?"

तपेसरी मोहन की लाश से चिमट गया ।

एक-सौ-आठ गोते लगने शुरू हुए । तपेसरी किसी के सम्हाले न सम्हलता था ।

"नहा ले मेरे लाल····तुझे तो पैराकी का बड़ा सौख था मेरे मिठुआ !"

तपेसरी एक-एक बात को याद कर फूट-फूट कर रो रहा था ।

कफ़न उतरा । मेहतर और महापात्र लपके ।

"अब मत बोलना । ये मेरा दाँव है । बाबा फैसला कर चुके हैं ।"

महापात्र कफ़न घसीटते हुए बोला—"बड़े बाबा आये फैसला करने वाले । मेरा हक्क है ।"

लपक कर दूसरा छोर मेहतर ने पकड़ लिया—"आज हक्क जताने आये हैं । दिलग्गी नहीं है । मैं ले के ही छोड़ूंगा ।"

"देखूं साले, कैसे लेता है । हड्डी तोड़ के धर दूंगा तेरी, चाहे आज नहाना क्यों न पड़े !" महापात्र मेहतर पर झपटा ।

तीन-चार लोग समझाने लगे ।

"नहीं आज मैं फैसला करके ही रहूँगा । साला मेरे हक्क में दखल देता है, भंगी का बच्चा !"

"और तू साले महाब्राह्मन का बच्चा ।"

महापात्र गुथ गया—"साले गाली देता है ?"

आसमान पर काले बादल घिरने लगे थे । लोगों ने जल्दी मचाई ।

"अच्छा, पहले करम तो करा दो। पीछे फैसला कर देंगे। पानी आने वाला है।" एक ने महापात्र से कहा।

"करम कैसा जी··पहले इस साले का तो करम कर दूं।"

दोनों तरफ़ से चटाचट और धपाधप तमाचे, घूंसे और गालियों के गोले चल रहे थे।

तपेसरी रोता हुआ बोला—"अरे मंसादीन महराज, छिमा करौ। दाग तौ लगै गया हमरे भैया! तुम्हरे पाँव छुइति हैं।"

"मानें क्या लाला··तुम्हीं कहौ धरम की बात··उत्ती बेला तुम्हीं ने तो न्याव किया था··हमारा हक्क है कि नहीं?"

मेहतर ने बात काटी—"हक्क कैसे··लाला की तो उमिर गुजर गई हियाँ··बताओ लाला कप्फन किसका··देखो, ईमान की बात।"

"ईमान क्या··उत्ती बेला कहा ही था।"

"मुल तब आपे में थोड़े रहे। पूछो लाला से।"

खिलावन बीच-बचाव करने लगा। महापात्र तैश में आकर बोला—"तुम चुप रहना खिलावन। मोहन के मुर्दे पर मेरा हक्क नहीं जमा तो मेरा जिन्दगी भर का जाता है। तपेसरी लाला रोज़ के तजरबेकार हैं। कह दें मोहन की लहास पे हाथ धर के, हक्क इसका है··फेंक दूं साले को। दो कौड़ी के दुसाले की बिसात ही क्या है?" मंसादीन महापात्र के मूंह पर 'हक्क' का तेज चमक उठा।

"खिलावन, तुम्हीं कहौ ईमान की। बाबा ने क्या फैसला किया था उस दम?" डोम का पक्ष कमजोर था।

बड़ी-बड़ी बूंदें पड़ने लगी थीं। अँधेरा घनघोर छा रहा था। लोग घबरा रहे थे।

तपेसरी सम्हला, बोला—"अच्छा जो बाबा कहैं भाई।"

तपेसरी चला। मेहतर आगे-आगे बढ़ा और लोग पीछे-पीछे।

कुण्ड में आग की लपटें उठ रही थी। खून के छींटे, पूजा का सामान, बकरे का कटा हुआ धड़—कुटी में चारों तरफ़ बिखरा हुआ था। बकरे के सिर में चर्बी भर कर दीप जलाया था। खून से सना हुआ कलेजा एक ओर रक्खा था, पास में ही शराब की बोतल। बकरे के खून से लथपथ अघोरी आसन मारे मंत्रोच्चार कर रहा था। उसकी आँखें बन्द थी। बीच-बीच में उसका बदन फड़क उठता था।

बाहर, सब लोग मंत्र-मुग्ध, स्तब्ध !

सहसा बाबा ने आँखें खोलीं। सामने तपेसरी को एक वस्त्र में खड़ा देखा।

शराब की होतल हाथ में उठाई। बकरे के कलेजे पर धार पड़ने लगी—"ॐ क्री आगच्छ-आगच्छ चामुण्डे क्रीं स्वाहा ऽऽऽ!"

तपेसरी की तरफ़ देख अघोरी क्रूरतापूर्वक ठहाका मार कर हँस पड़ा "हः हः हः। तेली साला ! ॐ ह्रीं क्लीं····"

आँधी, पानी, बिजली, मसान की पृष्ठभूमि और अघोरी का यह वीभत्स यज्ञ देख कर बहुत से डरपोक लोग नातेदारी, मुहल्लेदारी का खयाल छोड़ मसान से भाग खड़े हुये।

तपेसरी ने बाबा के मंत्र में अपने बेटे का नाम और अपनी जाति का हवाला दिये जाते हुये सुना। मरघट का बैपारी जीवन में पहली बार मरघट के वातावरण से भयभीत हो उठा। उसके चेहरे पर परेशानी और क्रोध के भाव साथ साथ झलक उठे।

बाबा ने कुंड में कलेजे की आहुति दी; आग की लपक बढ़ी।

बूढ़े, अभागे, निरुपाय तपेसरी की आँखों से सहसा प्रतिहिंसा की ज्वाला फूट निकली। लड़के की मौत को वह किसी तरह सह भी गया था, परन्तु उसकी लाश का दुरुपयोग और अपना जातीय अपमान यह

हरिगज़ बर्दाश्त न कर पाया। तीर की तरह कुटिया में घुस, अंधे आवेश में उसने हवन कुंड से एक जलती हुई लकड़ी उठा कर बाबा के खुले मुंह में अचानक ठूंस दी।

बाहर, बरगद की घनी छाया के नीचे पानी से बचकर भी, डोम और महापात्र अपने मन की आग से न बच सके थे। वहां भी हक्क के लिए युद्ध हो रहा था।

मरघट की धरती और मोहन की लाश बेबस-ही भींगती रही। मरघट के कुत्ते अपने जीवन संघर्ष में ठन कर जूझ रहे थे।

डाक्टर फरनीचर पलट

"क्यों बे रामू, साइनबोर्ड से मेरी डिगरियां कहाँ गई ?" डाक्टर मक्खनलाल एच० एम० डी०, बी० एम० डी०, एच० एम० सी० (कैलिफोर्निया, कोयम्बत्तूर, कलकत्ता) ने अपने दवाखाने के चबूतरे पर कदम रखते ही आदत के मुताबिक अपने साइनबोर्ड पर प्यारभरी नजर डाली ही थी कि एकाएक गर्म हो उठे।

रामू अन्दर दवाओंवाली अलमारी की टूटी टांग को ईटों के सहारे खड़ी करने की कोशिश कर रहा था। डाक्टर साहब की तेज आवाज कान में पड़ी और पच भी गई, रामू तिरछी ईट को सीधा करने में ही उलझा रहा। डाक्टर मक्खनलाल एच० एम० डी०, बी० एम० डी, एस० एम० सी (कैलिफोर्निया, कोयम्बत्तूर, कलकत्ता) हाई पोटेंसी तक गर्म हो उठे, कहने लगे--"हजार बार कह चुका हूँ कि कम्बख्त डाक्टर मिसरा के नोकरों से सबक सीख। कैसे अपने डाक्टर साहब की ताबेदारी बजाते हैं। कैसे उनकी एक घुड़की पर ही थरथरा उठते हैं। यहां इतना डांटता हूँ, फिर भी कुछ असर नहीं। यू ब्लडी स्वाइन !"

डाक्टर साहब गर्माहट से बड़बड़ाहट तक उतर आये, और पतलून की जेबों में दोनों हाथ डालकर खड़े-खड़े अकड़ते रहे।

रामू अलमारी की टांग का इलाज करके ही उठा। एक बार डाक्टर साहब के चहरे पर खाली नजरें डाल कर इस तरह देखा गोया कह रहा हो, 'हाँ, अब तुम्हारी बकवास भी सुन सकता हूँ।' और फिर बाहर आकर साइनबोर्ड को नजदीक से घूर-घूरकर देखने लगा। डाक्टर मक्खनलाल एच० एम० डी०, बी० एम० डी०, एच० एम० सी० (कैलिफोर्निया, कोयम्बत्तूर, कलकत्ता) की डिगरियों में शुरू का केवल एच० एम० और कलकत्ता का 'डबल टी० ए०' ही बच रहा था, बाकी

हुरूफों सहित काली पालिश की लकड़ी उखड़ गई थी। रामू ने उस खाली जगह को उंगली फेरकर महसूस किया, फिर धीरे-धीरे डाक्टर साहब की ओर गर्दन घुमाई और इस तरह गम्भीर होकर बोला जैसे कोई बत्तीस रुपए फीस वाला डाक्टर गए-बीते मरीज को जवाब दे रहा हो—"डिगरियाँ आपकी अब घिस गईं साहेब, बेकाम हो गईं।"

डाक्टर साहब के सब्र की आखिरी बूंद भी अब पसीने के साथ ही ढुलक चुकी थी। ज्वार के समुद्र की लहरों-सा उमड़ता हुआ डाक्टर साहब का गुस्सा उनकी तोंद को छाती के साहिल पर ला-ला कर पटकने लगा। हर सांस के साथ बढ़ती हुई तोंद को अपनी हद में रखते बेचारे पतलून के दो बटनों ने लड़ाका बीबी के कमजोर शौहर की तरह आखिरकार दम तोड़ दिया।

आग में घी पड़ गया। झट से पतलून सम्हाली और करीब-करीब चीखकर बोले—"अबे, खड़ा-खड़ा कानून न बघार। मैं पूछता हूँ, कैसे घिस गईं?"

"अरे रगड़ते रगड़ते घिस गईं साहेब। अपने पतलून के बटन ही देख लेओ!"

डाक्टर मक्खनलाल गुस्से की तेजी से गूंगे हो उठे। उनके भरे-भरे, जिमीकंद की गांठ ऐसे चेहरे के मसिल पकड़ने लगे। रामू अपनी मुस्कुराहट को नाक के नकसीरे रगडने की आड में, ज्यों छोटे से घूंघट की आड़ में बड़ा खूबसूरत चेहरा खिलता है, झलकता हुआ तेजी से अन्दर गया और घड़े से एक गिलास पानी लेकर आगे की ओर बढ़ा।

डाक्टर मक्खनलाल का क्रोध अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। रामू की मुस्काहट और पानी के गिलास को देखकर वे आपे में न रहे और दाँत पीसते, मुट्ठियां मांजते हुए अन्दर आये। पतलून नीचे खिसकने लगा, डाक्टर साहब को पतलून सम्हालने की फिक्र पड़ी,

गुस्सा ठिठक गया। तब तक मौके का लाभ उठाकर रामु बोल उठा—
"क्या तमासा कर रहे हैं साहेब ? वो सामने मरीज जा रहे हैं।"

डाक्टर साहब ने सड़क की तरफ घूमकर यों देखा ज्यों अकाल के टूटे को पकवानों भरी थाली की खबर मिली हो।

फुटपाथ पर ठिठकर चलते हुए दो देहाती डाक्टर साहब के मतब को सशंकित मुद्रा से देख रहे थे, गोया नकली और असली की पहचान करना चाहते हों।

डाक्टर साहब ने खुशामद और मचलने की क्रिया को एक साथ साधकर बड़ी आतुरता के साथ कहा—"जा-जा बेटा, लपककर बुला ला उन्हें। कहना, असली मशहूर डाक्टर यही है। जल्दी जा, कहीं कोई उन्हें मिसरा का पता न बता दे।"

गिलास मेज पर रखकर रामू नाक के नकसीरे रगड़ता हुआ बाहर चला गया। डाक्टर मक्खनलाल बड़ी आतुरता के साथ अपनी डाक्टरोचित गम्भीरता को सम्हालकर कुरसी पर बैठ गए, और स्टेथेस्कोप को जेब से निकालकर बाएं हाथ में ले उसी मुट्ठी पर अपना चेहरा टिका लिया, फिर शान से नुस्खा लिखने लगे। बीच-बीच में जरा सी नजर उठाकर फुटपाथ की तरफ देख लेते थे। रामू मेस्मेरिजम के प्रोफेसर की तरह उन देहातियों पर धीरे-धीरे असर डाल रहा था, और दोनों देहाती सशंक दृष्टि से देखते हुए उसकी बातें सुन रहे थे, बीच-बीच में एक दूसरे से नजरें मिलाकर अपनी शंकाओं का समर्थन भी प्राप्त कर लेते थे। डाक्टर मक्खनलाल के लिए यह प्रतीक्षा न जाने कितनी लम्बी-चौड़ी हुई जा रही थी, नुस्खा लिखते-लिखते ऊबकर कलम रख दी, मगर स्टेथेस्कोप वाला हाथ ज्यों का त्यों ही रहा। डाक्टर साहब का ध्यान मेज पर रक्खे गिलास के पानी की तरफ गया। गिलास उठाकर इस शान और संतोष के साथ पानी पीने लगे जैसे महीनों बाद आज इत्तफाक से उन्हें पानी पीने

की फुरसत मिल गयी और उस फुरसत का उपयोग वे बड़े इतमीनान के साथ कर रहे हैं। मरीजों के फंसने में जितनी देर होती जा रही थी उतनी ही डाक्टर साहब की बेकसी भी बढ़ती जा रही थी। ठण्डे पानीं के घूंट रफ्ता-रफ्ता मिथिलेडेट स्पिरिट के घूंट बनते जा रहे थे कि अचानक एक देहाती खीझ भरे स्वर में जोर से कहता हुआ सुनाई पड़ गया—"अरे काहे, बार-बार अटकावत हौ, हमका ? कहि चुकेन कि मिसिर डांगदर के लगे जाब। चलौ हो रमैया।"

एक ने दूसरे का हाथ पकड़कर खींचा, डाक्टर साहब की उम्मीदों के तार खिच गए। गिलास मेज पर रखकर तुरन्त खड़े हो गए। बदहवास कदम बढ़ा ही था कि ढीली पतलून पकड़े हुए वहीं से खड़े-खड़े पुकारने लगे—"ओ भय्या देहाती! यहाँ आओ, यहाँ आओ! अरे रामू, लाता क्यों नहीं इन्हें ? आ जाओ, तुमसे एक बात कहनी है।"

रामू एक का हाथ पकड़कर दूकान की ओर खींचता हुआ बोला—हाँ-हाँ बात तो सुनते ही जाओ, यार। इनकी बात की कोई कीमत थोड़े ही है।

"क्या बकता है रामू ?" डाक्टर मक्खनलाल बड़ी बड़ी मनौतियों के बाद आए हुए मरीजों के सामने रामू का इस तरह लापरवाही के साथ बात करना बर्दाश्त न कर सके। रामू ने इस डांट के जबाब में अपने नकसीरे रगड़े और अलमारी के पीछे डिस्पेंसरी में चला गया।

मरीजों को कुर्सियों पर बैठने के लिए इशारा कर खुद भी बैठते हुए डाक्टर साहब ने कहा—"कहो भैया, कहाँ से आए हो ?

"मड़ियाइं ते आए हन।" एक ने जबाब दिया।

"मड़ियाई ?" डाक्टर साहब ने पेशानी पर चिन्तन की रेखायें चढ़ाकर गर्दन हिलाते हुए कहा—"वहाँ तो मैं कई बार हो आया हूँ।"

अलमारी के आड़ से रामू बोला—"जब-जब तगादों मे घबराई हैं मड़ियाई ही गए हैं।"

डाक्टर साहब ने अपने गुस्से पर लगाम लगाकर बात पर रंग चढ़ाते हुए कहा—"हाँ, तगादे पर भी जाना ही पड़ता है। वैसे लखनऊ के बाहर जाने की फीस में सोलह रुपए चार्ज करता हूँ। मगर तुम लोग तो इतनी दूर से पूछते-पूछते आए हो। तुमसे कोई फीस नहीं लूंगा। खाली दवा के दाम देना। हाँ बताओ, तुम्हें क्या शिकायत है।

डाक्टर साहब स्टेथेस्कोप को गले में डालकर मरीजों की शिकायत सुनने के लिए तैयार हो गए।

मरीज बोला—"हमका आपते कौनो सिकैत नाहीं है सरकार। हमका जाय देओ। डांगदर मिसिर के लगै जाब।"

"मिसरा ?" डाक्टर मक्खन इस तरह हंसे गोया देहातियों की बुद्धि पर तरस खा रहे हों, फिर कहने लगे— "किसने तुमको ये सलाह दी ? उनके पास तो खाली चार हरूफों की डिगरी है, एम० बी० बी० एस०। अब अपने मुँह से कहना तो नहीं चाहिए, नौ हुरूफों की डिगरियां पास की हैं मैंने। तुमने मड़ियाहूँ में सुना ही होगा मेरा नाम—डा० मक्खनलाल एच० एम० डी०, बी० एम० डी०, एच० एम० सी० (कैलिफोर्निया, कोयम्बत्तूर कलकत्ता)। मैंने हजारों केसेज अच्छे किये हैं।

डिस्पेंसरी से बाहर निकलते हुए रामू बोला—"अरे ये बड़े पुराने डाक्टर हैं। डाक्टरी करते-करते इनकी डिगरियाँ तक घिस गई।"

"रामू !" डाक्टर साहब ने घुड़की दी।

रामू चट से बोल उठा—"महाराजा बांसमंडी का नुस्खा बांध दिया है हुजूर, अब नवाब साहब नक्खास को पलस्तर चढ़ाना हैं।"

"ठीक है।" डाक्टर साहब गम्भीरता के साथ बोले—"उनसे कहना कि पलास्तर चढ़ाने की फीस एक हजार रुपये लूंगा और दिन में मुझे आज सत्तर मरीज देखने हैं इसलिए ...."

"सत्तर ?" रामू ने मुंह सिकोड़कर कहा—"एक सौ सत्तार डाक्टर साहेब। आप तो भूल-भूल जाते हैं।"

"हाँ, हाँ मैं भूल गया था। खैर, उनसे कह देना कि मैं दिन में विजिट नहीं कर सकता। रात में आऊंगा किसी वक्त।"

"मगर रात में तो आपकी कुतवाली में हाजरी लगती है न।"

डाक्टर मक्खनलाल ने आग-भरी निगाहों से रामू को घूर कर देखा, फिर हंसते हुए देहातियों से कहने लगे—"रात में दरोगाजी को इंजेक्शन लगाने जाता हूँ। बड़ी मुश्किल है, इतने मरीज आते हैं कि आज चार महीने से सोने और खाने तक की फुरसत नहीं मिली। बड़ा डाक्टर होना भी मुसीबत है। हाँ भई, बातओ तो तुम्हें क्या तकलीफ है? बुखार आता है?"

"नाहीं।"

"तब? पेट में दर्द रहता है?"

"नाहीं।"

"तब मेरे ख्याल में आंतों की ट्यूबरक्लोसिस है तुम्हें।"

रामू बोला—"हां डाक्टर साहब, और मेरे खयाल में इन्हें फेफड़े की ब्रांकाइटिस और गले की मेनेनजाइटिस भी है।"

डाक्टर मक्खनलाल ने कानों में स्टेथेस्कोप लगाते हुए गम्भीरता के साथ कहा—"हाँ-हाँ, हो सकता है। इधर आओ भैया, जरा इक-जामिन तो करूँ।"

"नाहीं। जिलेदार हमते कहिन हैं कि मिसिर डांगदर के लगे जावो। उइ बड़े डांगदर आंय।"

डाक्टर साहब ने बड़े पहुंचे हुए संत की तरह मायामोह से भ्रमित देहातियों की बुद्धि पर दुखित होते हुए कहा—"मैंने अभी-

अभी तुम्हें समझाया कि वे एक डिगरी वाले डाक्टर हैं, मैं तीन डिगरियों वाला हूँ—उनसे दो डिगरियां यानी पांच हरूफ बड़ा—"

रामू बात में बात जोड़कर बोल उठा—"हाँ और क्या ? अरे मक्खनलाल बड़ा कि मिसरी ?"

"रामू।" कानों से स्टेथेस्कोप निकालते हुए डाक्टर मक्खनलाल गरजे।

रामू ने उतने ही ठंडे स्वर में कहा,—इन्हें समझा रहा था सरकार। आजकल बड़े आदमियों का जमाना है, और बड़े आदमियों को तो मक्खन की ही जरूरत रहती है।"

देहाती उठ खडे हुए। एक ने दूसरे से कहा—'चलो हो काका। ये लोग कौनो बड़े जालिया हैं। हम लोगन का फसाय रहे हैं।"

दोनों चलने लगे। रामू और डाक्टर मक्खनलाल दोनों ही उनकी ओर बढ़े। नीमशहरी संस्कृति का देहाती भतीजा उलटकर खड़ा हो गया, कहने लगा—"अबकी दांय जो कौनो आगे बढ़ा तो लट्ठा मारब।"

डाक्टर और कम्पाउन्डर ठिठककर खड़े हो गए। दोनों मरीज घर आई लक्ष्मी की तरह वापस लौट गए। डाक्टर मक्खनलाल पतलून को तोंद से चिपकाकर ठंडी सांस छोड़ते हुए कुरसी पर बैठ गए। दो सेकंड चुप रहकर बोले—"मेरी किस्मत ही खराब है। क्या करूं ?"

"डाक्टरी छोड़ दीजिये साहेब, कोई और धंधा कीजिये।" रामू ने गंभीर सलाह दी।

कौन-सा धंधा करूं अब ? क्लर्की की, पन्द्रह बरस बाद रिट्रेंचमेण्ट में निकाला गया, कोई इंसाफ है ? होमोपैथी शुरू की, तो कोई पूछता नहीं। कहाँ जाऊं, क्या करूं ? आठ-आठ प्राणियों का पेट—जी चाहता है सबको गोली मार दूं, मतब में आग लगा दूं।"

रामू ने ठंडी सांस लेकर कहा—

"जी में आता है लगा दूं आग कोहेतूर में,

फिर खियाल आता है मूसा बेवतन हो जायगा।"

डाक्टर मक्खनलाल को इस शेर में दार्शनिकता भर संतोष मिला बोले—"सच है रामू। इसी खयाल से डाक्टरी करता चला जाता हूँ। तुम एक काम करो रामू। ये अलमारी इस जगह ठीक नहीं लगती। और ये कुरसी-मेज भी गलत जगह रक्खी है।

"अभी सबेरे ही तो पलटी है साहब।"

"फिर पलट दो रामू। उलट-पुलट करते रहो। जब शो अच्छा बन जाएगा तो प्रेक्टिस जरूर चमकेगी।"

"मगर आप की तरह मैं तो बेकार नहीं बैठ सकता साहेब। कल से डाक्टर मिसरा के यहाँ नौकरी—"

"रामू, मेरे कलेजे पर आरी न चला। तू तो बेकार नहीं। मेरी दवाई-बेच-बेच के पैसा कमा लेता है—देख, तूने इतने दिनों मेरे यहाँ चोरी की, मैंने कुछ भी नही कहा।"

"पर अब चोरी करने को भी कुछ नहीं बचा साहेब। आगे पेट कहाँ से पालूँगा।"

"पेट कहाँ से पालूँगा?" डाक्टर साहब ने ठंडी सांस ली—"मेरे लिए भी तो यही सवाल है रामू।"

"इसी लिए तो कहता हूँ। डाक्टरी छोड़ दीजिये। कुलफी-मलाई का ठेला चलायेंगे। वो पंजाबी देखिये। कैसा बेचता हैं। तीन-चार सौ कमा लेता...."

"ठीक है। मगर डाक्टर होके कुलफी?"

"अरे लोग बी० ए०, एम० ए० होके जूते पर पालिश करते हैं। इसमें क्या हुआ। बल्कि डाक्टर होने की वजह से आपकी

कुलफियां ज्यादा बिकेंगी। वो पंजाबी देखिये कैसी आवाजें लगाता है--लाहौर का लखपती आज का कुलफीवाला। कुल्फी खाल्लो नसीब वाल्लो। मलाइयों के पेड़े। हम भी चिल्लायेंगे--डाक्टर मक्खनलाल की कुलफियां, नक्सवामिका के पेड़े।"

"शोर न मचा रामू। फरनीचर पलट दे। मैं तब तक तेरी बातों पर गौर करूँगा, कहकर डाक्टर मक्खनलाल रोज की तरह अपने भविष्य पर गौर करने लगे। रामू अलमारी खिसकाने लगा।

कलार्क ऋषि का शाप

[इस बार बम्बई में रहते हुए मेरा समय इतिहास ग्रन्थों की कृपा से मोहनजोदरो के युग में बीता। स्वप्न और वास्तविकता के संगमलोक में सब कुछ देखते-सुनते हुए एक दिन मेरी भेंट भविष्य युगीन सुप्रसिद्ध पुरातत्व-वेत्ता डाक्टर संसारकर से हो गयी। डाक्टर संसारकर आने वाले समय के ख्यातिसिद्ध विद्वान् हैं। वृहस्पतिलोककी युनिवर्सिटी से उन्ह नवीन सभ्यता के विकास-सम्बन्धी थीसिस पर डाक्टरेट की उपाधि मिली है। वे चतुरंगीणी प्रतिभा के धनी हैं। चन्द्र लोक के काव्यरस की युनिवर्सिटी ने उन्हें आनरेरी डाक्टरेट प्रदान कर अपना गौरव बढ़ाया है। आप शुक्र-लोक के विलास-विश्वविद्यालय के फैलो और मंगललोक की एथलेटिक असेम्बली के सदस्य भी हैं। आशा है, डाक्टर साहब की प्रस्तुत रचना से पाठकों का मनोरंजन होगा।]

आज से दस साल पहले सन् ५९५१ ईस्वी के अगस्त महीने की बात है। कल्याण नगर के पास पड़े हुए वीरान ऊसर द्वीप में इतिहास और पुरातत्व के विद्वानों की एक टोली को लगभग चार हजार वर्ष पुरानी सभ्यता के चिह्न मिले। अखवारों में बड़ी धूम से इसकी चर्चा होने लगी।

इधर कुछ दिनों तक कल्याण में युनिवर्सिटी हिस्ट्री कांग्रेस का अधिवेशन बड़े समारोह और सफलता के साथ होता रहा था। डाक्टर नेपच्यून ने पृथ्वी और मंगल लोकों के बीच होने वाले पहले महायुद्ध की तारीख निश्चित करते हुए अकाट्य तर्क और प्रमाण प्रस्तुत किये और अब करीब-करीब सर्वसम्मति से यह मान लिया

गया है कि पृथ्वी और मंगल का पहला महायुद्ध ईसा की बाईसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्धकाल में किसी समय हुआ था। इस प्रकार उक्त हिस्ट्री कांग्रेस में अनेक विद्वानों ने महत्व के विषयों पर गम्भीर चर्चा की। अधिवेशन के समाप्त हो जाने पर कुछ विद्वानों ने पिकनिक मनाने के लिए उस रेतीले ऊसर द्वीप को चुना जो लगभग दो हजार वर्ष पहले समुद्र के गर्भ से निकला था और जो इस समय ऊजड़ और निकम्मे तौर पर कल्याण की भव्य बस्ती के पास, सुन्दर शरीर पर कोढ़ के एक सफेद दाग की तरह पड़ा है।

इस द्वीप के बारे में जनश्रुति यह थी कि वहां कोई आबाद नहीं हो सकता। धार्मिक लोग पुराण मत से बतलाते हैं कि सनातन काल में कलार्क ऋषि के शाप से यह द्वीप रसातल में लीन हो गया था। चूंकि इस शापभ्रष्ट द्वीप की मनहूसियत से शेषनाग का रस भंग होता था इस लिए उन्होंने अति घृणा करके इसे फिर मर्त्यलोक में फेंक दिया। तव से यह द्वीप पुन: पृथ्वी का भाग तो अवश्य बन गया मगर आबाद न हो पाया। कहा जाता है कि कलार्क ऋषि के शाप के कारण इस रेतीले द्वीप में मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जो भी जीव जाकर बसते हैं वे अपना ठोस रूप खोकर शुष्क और रेतीले हो जाते हैं। इन किंवदन्तियों के कारण जन साधारण में से कोई भी, कभी भी, इस रेतीले द्वीप की ओर मुंह उठाकर देखने का साहस भी नहीं करता था। इसलिए जब इतिहास और पुरातत्व के विद्वानों ने उस अभिशप्त द्वीप में पिकनिक मनाने का निश्चय किया तो अखबार और उनके पाठकों की दुनिया में बड़े कौतूहल के साथ इस विषय की चर्चा होने लगी। विद्वानों के सनकी और झक्की होने की सिफ्त को लेकर कुछ मजाक भी चला।

मगर जब उस ऊसर धरती से लगभग पांच हजार वर्ष पुरानी सभ्यता के अवशेष प्रकट होने की खबरें प्रकाश में आयीं तो ब्रह्माण्ड

का—विशेष रूप से सारी पृथ्वी का—ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ। ऊसर द्वीप का महात्म्य एकाएक बढ़ गया।

पुरातत्व विभाग की ओर से ऊसर द्वीप में खोदाई का काम लगभग सात वर्षों तक चलता रहा था और इस समय तक उस द्वीप में पुरानी सभ्यता के लगभग सभी ध्वंसावशेष अपना रहस्य प्रकट कर चुके हैं।

प्राचीन इतिहास की उपलब्ध सामग्री के साथ इन ध्वंसावशेषों का मिलान करने से हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि नयी सभ्यता के 'कैल्कॉलिथिक' काल में यह द्वीप आबाद रहा होगा; सभ्यता में बर्बरता के यथेष्ट प्रमाण हमें इस ऊसर द्वीप में मिले हैं। यह 'कैल्कॉलिथिक' युग ईसा की बीसवीं शताब्दी में आया था, इस विषय में विद्वान् अब दो मत नहीं रखते। इन अवशेषों की सूक्ष्म जांच करने के बाद मैं इस निश्चय पर पहुँच गया हूँ कि बीसवीं सदी के मध्यकाल में यह द्वीप मध्याह्न के सूर्य की तरह तप रहा था। इस द्वीप की सभ्यता तत्कालीन पृथ्वी पर राज्य करती थी।

खोदाई में हमें बहुत-सी चीजें मिली हैं। उस समय लोग भाप से चलनेवाले जहाज और पेट्रोल से उड़ने वाले हवाई जहाजों का इस्तेमाल करते थे। चूँकि इस द्वीप में दोनों के अवशेष मिले हैं इसलिए यह कहा जा सकता है कि यह द्वीप व्यवसाय वाणिज्य का प्रधान केन्द्र रहा होगा। पेट्रोल से चलने वाली छोटी, बड़ी और दो मंजिला मोटरों तक के चकनाचूर हमें इस द्वीप के खण्डहरों से मिले हैं। रेल और ट्रामों की बनावट पर गौर करने से यह मालूम होता है कि बिजली का प्रयोग करने में यह लोग सिद्धहस्त थे। दो पहिये वाली किसी सवारी गाड़ी का इस्तेमाल भी होता था; और मैं तो यहाँ तक कहने का साहस करूँगा कि प्राचीन ग्रंथों में जिस साइकिल नामक सवारी

की महिमा बखानी गयी है वह यही चीज है । प्राचीन ग्रंथों में अनेक स्थलों पर कलार्क ऋषि का साइकिल पर चढ़ना बखाना गया है ।

कई जगह हमें एक अजीब किस्म की सवारी के टूटे-फूटे हिस्से भी मिले हैं । यह गाड़ी लकड़ी की होती थी, इसके दो पहिये होते थे और इसे कोई जानवर खींचता था । यह जानवर घोड़ा नहीं हो सकता, इसके तो मेरे पास पक्के प्रमाण हे । इस द्वीप में कई जगह हमें घोड़ा गाड़ियों के अंश भी मिले हैं । इस लिए उस भद्दी-सी पुरानी गाड़ी को जरूर हो कोई दूसरा जानवर खींचता रहा होगा । लगभग दस हजार वर्ष पहले आर्य जिस किस्म की गाड़ियों का इस्तेमाल करते थे, यह हूबहू वैसी ही है । आर्यों की गाड़ियां बैल खींचते थे । हो सकता है कि इस द्वीप की इन गाड़ियों को भी बैल ही खींचते रहे हों । निजी तौर पर मेरा यह अनुमान भी है कि इस गाड़ी को बैल और कहीं-कहीं कुली जाति के आदमी खींचते रहे होंगें । जो भी हो, विजली और भाप के युग में भी मानवी-सभ्यता के ठेठ आदिमकाल की सवारी के चिह्न देखकर हमें आश्चर्य और हर्ष भी होता है ।

इस द्वीप में ऊंचे-ऊंचे मकानों की महिमा थी । इतिहास की पुस्तकों में हमें बीसवीं शताब्दी के जो प्रमाण मिलते हैं उससे यह पता चलता है कि उस समय पृथ्वी के लोगों को गगनचुम्बी अट्टालिकाएं बनाने का ज्ञान था । इस द्वीप में ऐसे ही मकानों के खण्डहर हमे मिले हैं । यहाँ एक बात में यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि पृथ्वी में प्राचीन नगरों की खोदाई करते हुए हमें जहाँ-जहाँ आलीशान इमारतें मिली हैं वहाँ खटमल जाति के मानवों का प्राधान्य था, यह बात अव प्राय सिद्ध हो चुकी है । खटमल जाति के लोग दूसरे आदमियों का खून-चूस कर रहते थे । इनके धर्म को लेकर किसी मत विभेद की गुंजा-इश ही नहीं । खटमल जाति के लोग कठोर पूंजी धर्म का पालन करते थे । वीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में खटमलों ने पृथ्वी पर

जो गजब ढाया था, उसका वर्णन पढ़कर आज भी हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। एटम की खोज—जिसके साथ हमारी नयी सभ्यता का श्री गणेश होता है—इन्हीं खटमलों के राज्य काल में हुई थी। विनाश के एक प्रभावशाली अस्त्र के रूप में इन खटमलों ने एटम शक्ति का उपयोग किया था। उस समय खटमलों नें करीब-करीब सारी पृथ्वी का खून-चूस लिया था। समाजवादी धर्म मानने वाले अपने विरोधियों पर तथा उनका साथ देने वाले कुली या दास जाति के लोगों पर इन्होंने अकल्पनीय अत्याचार किये थे। इन्होंने नगरों को तबाह किया, एटमके बम गिराकर सभ्यता का नाश किया। इनके अत्याचारों का सबसे बड़ा प्रभाव यह है कि इन्होंने लोगों को भूखों मार डाला। उस समय खटमलों ने अन्न, वस्त्र, रहने और रोगों से लड़ने के सभी साधनों पर एकाधिकार कर लिया था। इन खटमलों के पूंजीधर्म का निकृष्टतम कर्म काण्ड था मुनाफाखोरी। आज के युग में लोग अपनी बुद्धि और कल्पना को नोच-खरोंच कर भी इस घृणित मुनाफा खोरी के मर्म को नहीं समझ पाते। प्राचीन ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन से जो कुछ हमें मालूम होता है वह यह है कि मुनाफाखोरी की प्रथा का अवलम्बन करके ही ये खटमल लोग सारी पृथ्वी का रक्त शोषण करते थे और पृथ्वीवासियों के शरीर में मृत्यु के कीटाणुओं का प्रवेश करा देते थे।

ऊसर द्वीप में भी इन्हीं खटमलों का शासन था, यह बात निर्वीवाद रूप से सत्य सिद्ध हो चुकी है। द्वीप के मध्य भाग की बड़ी-बड़ी इमारतों में अनेक लोहे के चक्के और कलपुर्जे मिले हैं। यह शायद उन्हीं दानवों के ध्वंसावशेष हैं जिनकी शक्ति से खटमल पृथ्वी पर राज करते थे। प्राचीन ग्रन्थों में इन लोहे के दानवों को मशीन कहा गया है। उनसे हमें इस बात का पता भी चलता है कि तत्कालीन सभ्यता के विकास में सहायक होते हुए भी खटमलों की अधीनता में रहने के कारण

इन मशीनो से मानवों का रक्तशोषण ही अधिक हुआ। इन मशीनों के रहने के स्थानों को मिल या फैक्ट्री कहा जाता था।

संसार का खून चूसकर खटमल बड़े विलास वैभव से रहा करते थे। कीमती रत्न और सोने के गहने इस द्वीप में हमें कसरत से मिले हैं। अनुसन्धान की सुविधा के लिहाज से हमें कुछ अमूल्य सामग्री उपलब्ध हुई है। बहुत से प्रस्तर-पट और लोहे के पत्तरों पर रंगे हुए साइन बोर्ड हमें मिले हैं। लिपि के लिहाज से इनमें विभिन्नता है। बीसवीं शताब्दी की अंग्रेजी, देवनागरी, गुजराती और फारसी लिपियों में हमें व्यक्तियों और मुहल्लों के नाम मिलते हैं। सब से अधिक गहने और कीमती सामग्री हमें कालबा देवी मलावार हिल और मेरीन लाइन्स के खण्डहरों से मिली है।

कालबादेवी की दो विशाल इमारतों में एकसाथ अनेक ठठरियों का पाया जाना इस बात का द्योतक है कि यहाँ सभाभवन रहे होंगे। चूंकि ठठरियां खटमलों की हैं। इसलिए निस्संदेह यह स्थल खटमलों के सभाभवन ही रहे होंगे। खटमलों की सभा का स्पष्ट अर्थ है खून चूसने वाली सभा। यह खून चूसने वाली सभा किस प्रकार की रही होगी, इस विषय को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कई विद्वान यह मानते हैं कि ये इमारतें विधान सभा या पार्लमेंट रही होंगी। मैं ऐसा नहीं मानता। विधान तो नेता जाति के लोग ही बनाया करते थे। प्राचीन नगरों की खोदाई में जहाँ-जहाँ विधान-सभाएं मिली हैं वहाँ जो मानव ठठरियाँ हमें प्राप्त हुई हैं वे अधिकांशतः नेता जाति की ही हैं। यह नेता जाति खटमलों तथा कुलियों का वर्णसंकर थी। उस समय दो ही प्रमुख जातियों के मानव पृथ्वी पर निवास करते थे—खटमल या कुली। खटमल लक्ष्मीनारायण के उपासक होते थे और कुली दरिद्रनारायण के। इन दोनों जातियों के योग से नेता नाम के वर्णसंकर उत्पन्न हुए जो आधे नर और आधे खंजर हुआ

करते थे । ऊसर द्वीप की विधान सभा में हमें नेता जाति की बहुत-सी ठठरियाँ मिली हैं । परन्तु यह विधान सभा कालबादेवी में नहीं थी । इस लिए मैं इस निश्चय पर पहुँच गया हूँ कि कालबादेवी क्षेत्र में जो दो सभा भवन खटमलों की ठठरियों से भरे मिले हैं वे सट्टा-भवन रहे होंगें । विज्ञान और आनन्द के इस परम युग में हम सट्टे को नहीं समझ पाते । क्या बला थी ? इसका कैसा उपयोग होता था ? यह कुछ भी समझ में नहीं आता । प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि खटमल सट्टा खेला करते थे । खटमलों का खेल भी कैसा भीषण होगा, इसका अनुमान तो किया जा सकता है ।

इस छोटे-से लेख में ऊसर द्वीप की खोदाई से प्राप्त सभी चीजोंका वर्णन करना कठिन है । इसलिए अन्त में एक प्रचलित जनश्रुतिका उल्लेख कर अपना यह लेख समाप्त करूँगा । कल्याण नगर के निवासियों में इधर एक जनश्रुति चमत्कारिक रूप से प्रचलित हो रही है कि ऊसर द्वीप के इन खण्डहरों में आधीरात के बाद एक नरकंकाल अक्सर डोला करता है । वह मिल और फैक्टरियों के क्षेत्रों में जाकर उनके चक्के-पुरजों को देख देखकर हिंसात्मक रूप से हुंकार भरता है और उनको स्पर्श कर बुरी तरह से कराहता है । सट्टे और विधान सभा के खण्डहरों में जाकर यह नरकंकाल दोनों हाथ उठा-उठा कर कोसता है और क्रोध में पागलों की तरह प्रलाप करता है । खटमलों और नेताओं की ठठरियों को वह घृणा और क्रोध की दृष्टि से देखता है, और अन्त में कुली जाति के एक मुहल्ले में जाकर बहुत-सी ठठरियों को कलेजे से चिपका कर फूट-फूटकर रोता है । इन ठठरियों में बच्चों की ठठरियाँ भी है । लोगों को मान्यता है कि उस नरक काल में स्वयं कलार्क ऋषि की आत्मा भटकती है जिनकी पत्नी और बच्चों को खटमलों के अत्याचारों के कारण भूख से तड़प-तड़प कर मरना पड़ा था । इन्हीं कलार्क ऋषि के शाप से खटमलों का यह वैभव-शाली नगर ध्वस्त हो गया ।